अवश्य ही प्रकाशन होना चाहिए। इस विषय में सौभाग्यवश प्रसिद्ध बैरिस्टर और साहित्यसेवी श्री नवल किशोर जी अग्रवाल से मुझे अच्छी सहायता मिल गयी। उन्होंने मेरे अनुरोध को मान कर लेखों के पुनर्मुद्रण के लिए खेतान जी से स्वीकृति दिला दी। खेतान जी ने विश्वमित्र में प्रकाशित बाइस लेखों के अतिरिक्त पाँच अप्रकाशित लेख भी प्रदान करने की कृपा की, जो इस पुस्तक में लेख-संख्या २३ से २७ तक हैं।

मुझे पूरा विश्वास है कि विद्वानों और धार्मिकों के बीच इस पुस्तक की काफी प्रतिष्ठा होगी, क्योंकि इसमें उन तत्त्वों की विवेचना की गयी है, जिनसे हमारा जीवन समुन्नत हो सकता है, हम अपनी संस्कृति को पहचान सकते हैं, अपने स्वरूप को पहचान सकते हैं, अपनी महत्ता को पहचान सकते हैं तथा चरम उद्देश्य की उपलब्धि कर सकते हैं।

और मनुष्य मात्र का चरम उद्देश्य एक ही हो सकता है— आत्म ज्ञान अर्थात् परमात्म-तत्व की उपलब्धि। जब तक मनुष्य अपने इस पावन उद्देश्य को भूला रहता है तब तक वह अपने लिए, अपने समाज के लिए और संसार के लिए भार-स्वरूप रहता है, विकराल समस्या बन कर रहता है। विश्व की सारी अनैतिकताओं और संहारकारिणी हिंसाओं के मूल में मानव की यही लक्ष्य-भ्रष्टता है। इसी लक्ष्य-भ्रष्टता से होनेवाले प्रलयंकर-कुफलों से आतंकित होकर हमारे मनीषियों ने आर्त्त स्वर में यह प्रार्थना की थी कि हे देवाधिदेव, हमलोगों को

सन्मार्ग पर ले चलो, पथ-भ्रष्ट न होने दोः—

"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्"

—ईशावास्योपनिषद्

आज विद्यालयों में और विभिन्न संस्थाओं में जो उच्छृं-खलता दीख पड़ती है उसका क्या कारण है ? धर्म और नैतिकता की अवहेलना करके सुव्यवस्था और अनुशासन की आशा करना आकाश-कुसुम की कामना के समान है। इसमें केवल छात्रों अथवा जनता का ही दोष नहीं है। हमारे तथाकथित धर्माधिकारियों ने ऐसे आडम्बर, अन्धविश्वास और स्वार्थ-परता के जाल बिछा रखे हैं कि लोगों का धर्म-विमुख होना स्वाभावि सा हो गया है। दुर्भाग्यवश उन्हें कतिपय धर्मप्रिय व्यक्तियं की ओर से अज्ञानता-वश प्रोत्साहन भी मिल जाता है।

सम्प्रति परिस्थिति के सुधार के लिए यह आवश्यक है वि हम धर्म के वास्तविक स्वरूप को तथा सद्ग्रन्थों के सही अर्थो को जन-साधारण के समक्ष उपस्थित करें। अभी साहित्य औ समाज की इससे बढ़ कर दूसरी सेवा नहीं हो सकती। धा के सच्चे स्वरूप का अवबोध करानेवाले तथा मनुष्यों को चरा उद्देश्य तक ले जानेवाले ग्रन्थों में वेद का स्थान सर्वोच्च है एतद्विषयक अन्य ग्रन्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से वेद की ही व्याख्य करते हैं। जब वेद का पढ़ा और समझा जाना दुष्कर हो गय तब परम तत्त्वदर्शी महात्मा तुलसीदासजी ने सारे वेदों औ शास्त्रों के सार को लेकर रामायण का प्रणयन किया। कालान्तर

में घर-घर में रामायण का प्रचार हो गया। राम, रामायण और तुलसी की पूजा होने लगी, किन्तु लोग तुलसी के उद्देश्य और वास्तविक अर्थ को प्रायः भूल ही गये।

वेदों का ज्ञान और अध्ययन-अध्यापन इतना कम हो गया है कि कई उच्च कोटि के साहित्यिक अधिकारी भी प्रायः निःसंकोच भाव से कह दिया करते हैं कि रामायण और वेदों में कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत स्वयं तुलसीदासजी ने पग-पग पर जोरदार शब्दों में यह उद्घोषित किया है कि वेदों में राम का यश वर्णित है, सीता, राम और भरत की महिमा गाते-गाते वेद भी थक जाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि राम की कथा का वेदों में यदि वर्णन नहीं है तो क्या तुलसीदास जी ने मिथ्या प्रवचन किया? क्या वे वेदों के नाम पर जनता को धोखा देना चाहते थे? क्या इस प्रवंचना में उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ था? यदि नहीं, तो राम, सीता और भरत इत्यादि की कथा वेदों में कहाँ और किस रूप में वर्णित है? वेदों के कौन-कौन से भाव रामायण में किस रूप में लिये गये हैं? जहाँ तक मुझे ज्ञात है, आज तक किसी विद्वान् ने रामायण और वेदों का, इस प्रकार का, तुलनात्मक अध्ययन नहीं उपस्थित किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि ऐसा अध्ययन उपस्थित किया गया होता तो वेदों पर, रामायण पर और सारे हिन्दू धर्म की मार्मिकता पर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश पड़ता।

यह बड़े ही हर्ष का विषय है कि श्री काली प्रसाद जी खेतान ने वेदों के साथ रामायण का आद्योपान्त तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर लिया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने उसी अध्ययन का दिग्दर्शन कराया है। प्रारम्भ से उन्नीसवें लेख तक विषय प्रवेश और सातो कांडों का सूक्ष्म-दिग्दर्शन कराया गया है। इ लेखों में रामायण-पाठ के तीन रास्तों का विशद रूप से केव परिचयात्मक विवरण दिया गया है—(१) सात कांडों का, (२ नवधा भक्ति का (अथवा नवाह्न पारायण का) और (३) मा पारायण का। विषय-विवेचन को सरलता-पूर्वक समझने लिए प्रारम्भ में कुछ पारिभाषिक शब्दों (यथा द्वादश भाव षडैश्वर्य, नव सम्बन्ध और अष्ट मृत्यु प्रभृति) की व्याख्य भी कर दी गयी है। बीसवें में लेख-संख्या १६ पर्यन्त आ हुए विचार-समूह को सार रूप से संगृहीत कर दिया गया है पुनः इक्कीसवें लेख से २७वें तक मास पारायण के द्वितीय विश्राम स्थल तक की अपेक्षाकृत विस्तृत विवेचना, सती-परीक्षा, शिव पार्वती-विवाह, शिव-विवाह में गणेश की पूजा इत्यादि अने गुत्थियों को वेद मन्त्रों की सहायता से सुलझाने का प्रशंसनी प्रयास किया गया है।

लेखों को पढ़ कर हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है, कि वेद के रूपकात्मक प्रयोगों के सही अर्थ न लेकर, उनके वाच्यार्थ में ही भटकते रहने के कारण, आजतक यह महान रहस्यान्वेषण नहीं हो सका था।

उदाहरण के लिए हम सती-परीक्षा या शिव-विवाह को ले सकते हैं। भक्तों के मन में यह शंका सदा से बनी हुई है कि आखिर जगज्जननी, शिव-प्रिया सती के मन में राम के प्रति शंका हुई ही क्यों ? और यदि हुई और उसके निवारणार्थ उन्होंने परीक्षा ही लेनी चाही तो इसमें अपराध क्या हुआ ? शिव ने ऐसी सती को पत्नी रूप में क्यों नहीं स्वीकार किया ? इसका संक्षिप्त उत्तर इस पुस्तक के सत्ताइसवें लेख में है। लेखक ने वेद-मंत्र की सहायता से इसे समझाया है।

कुछ भिन्न शब्दों में ऋग्वेद के नासदीय सूक्तमें इन्हीं शंकाओं को उठाया गया है और समाधान की ओर भी इंगित किया गया है। अतः २७ वें लेख में प्रारंभ से प्रायः अन्त तक नासदीय सूक्तों के छायानुवाद-द्वारा ही सती की कथा का उल्लेख किया गया है। यह बड़े ही आश्चर्य, आह्लाद और विस्मय का विषय है कि नासदीय सूक्त में दो प्रकारान्तर से सती-कथा वर्णित है। पाठकों की सुविधा के लिए मैं यहां नासदीय सूक्त उद्धृत कर रहा हूं, जिससे तुलना करके २७ वें लेख के महत्त्व को हृदयंगम किया जा सके:—

तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी दुपरि स्विदासीत् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥

—ऋग्वेद

खेतान जी ने सूर, विद्यापति, बिहारी, कबीर और मीरा की कृतियों का भी ठीक इसी प्रकार का तुलनात्मक और चमत्कार पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत कर लिया है। क्रमशः इन विषयों पर भी आप लिखेंगे, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत पुस्तक में कहीं-कहीं विषय इतना गंभीर और विश्लेषणात्मक हो गया है कि जिन्होंने वेदों का सांगोपांग अध्ययन और मनन नहीं किया है उनके लिए कठिनाई भी उपस्थित हो सकती है, पर ऐसे स्थल बहुत अधिक नहीं हैं। विद्वान् लेखक ने यथासाध्य सरल शैली का ही अनुसरण किया है। ग्रन्थ में पग-पग पर लेखक के अध्ययन की गंभीरता और दृष्टिकोण

की मौलिकता को देखकर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। खेतान जी ने प्रायः पैंतालीस वर्षों से निरन्तर अपने जीवन का बहुमूल्य समय देकर वेद-वेदान्तों का स्वाध्याय किया है तथा कई बार रामायण का पारायण भी किया है। इसी से उन्हें वेदों और रामायण के भाव-साम्य का आभास मिला। महात्मा तुलसी दास को अपने सुयोग्य गुरु से निश्चय ही भारत की प्राचीनतम आध्यात्मिक परम्परा की निगूढ़तम निधियाँ क्रमागत रूप से उपलब्ध हुई होंगी। उन्होंने अपने महाकाव्य में उनका समुचित उपयोग किया। तत्पश्चात् देश की अनेकानेक धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक उत्क्रान्तियों के फलस्वरूप यह दिव्य परम्परा लुप्त हो गयी। आज, अपने अध्ययन और अध्यवसाय के फलस्वरूप खेतान जी ने उस लुप्तप्राय शृंखला का पुनरुद्धार करके हिन्दी साहित्य का और धार्मिक जगत का असीम उपकार

रामायण के रास्ते

१

रामायण के विषयों में प्रवेश करने के अनेक रास्ते हैं। मानस वही का वही है, परन्तु चतुर नाविक उसमे नित्य नयी दिशाओं से भिन्न-भिन्न घुमावों के द्वारा आनन्द की नवीनता बनाये रख सकता है। फलत मानस के द्वारा प्राप्त रोचकता का अन्त नहीं है और लाभ भी अशेष हैं। मानस मे सहस्रों द्वीप हैं—शब्दों के किम्वा भावों के। धन्य टीकाकार और प्रवक्तागण जो भक्तों को कभी तो उन द्वीपों पर चढा कर दूर तक के दर्शन कराते हैं और कभी सरोवर के रस-पुंज मे ऐसे गोते लगवाते हैं कि उन्हें भावुकतावश विह्वल कर देते है। यह हमारा सौभाग्य है कि रामायण का अनुशीलन ऐसी खूबी से हुआ है कि किसी पद या शब्द की तो बात ही क्या, शायद ही कोई अक्षर भी विशेषज्ञों, विवेचकों और भक्तराजों की दृष्टि से ओझल रह गया हो। मुझे रामायण की कई टीकाएं प्राप्त हुई हैं। उनमे पडित श्रीकान्तशरण जी का सिद्धान्त-तिलक और श्री अजनी नन्दन शरण जी का मानस पीयूष विशेष उल्लेखनीय हैं। सिद्धान्त तिलक तीन जिल्दों मे है और मैं सुनता हू कि सुप्राप्य नहीं है। भक्तप्रवर वल्लभदास जी अग्रवाल की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ

है। यह मुझ पर उनकी असीम दया का सुन्दर फल है। मानस पीयूष अभी अधूरा है। सम्पादक और प्रकाशक का दोष नहीं है, क्योंकि वे लाचार हैं। ऐसे उपादेय ग्रंथ के बृहत् संस्करण के लिए कागज, छपाई की उत्तमता और समय की, पाबन्दी न हो सके यह देश की उदासीनता का परिचायक है। यदि नरसिंह कम्पनी के बद्री बाबू (जो रामायण के अनन्य भक्त हैं) ने मुझे नहीं बताया होता तो मुझे तो इसका पता भी न चलता।

अच्छे प्रवक्ता भी अनेक हैं। उनका सुयश सुनकर चित्त बहुत प्रसन्न होता है। सभी के रास्ते कुछ भिन्न हैं, पर प्रधानत उनकी प्रणाली एक है। सभी मानो सूक्ष्मदर्शी यन्त्र (माइक्रोस्कोप) से काम लेते हैं। आध्यात्मिक अर्थ बताने में या रस प्रस्फुटित करने में वे विलक्षण सूक्ष्मता निभाते हैं। जिन्हें मैंने स्वय देखा और जिनके प्रवचन मैंने सुने उनमें विशेष उल्लेखनीय दो सत्पुरुष हैं। एक हैं बिन्दुजी, जो वयोवृद्ध हैं और बहुत नाम कमा चुके हैं। उनको सभी जानते हैं। उनके विषयमे मैं यदि अधिक कहू तो एक प्रकार से मेरी धृष्टता होगी। दूसरे हैं बनारस के कृपाशंकरजी, जो नवयुवक हैं और बड़ी ख्याति पाते जा रहे हैं। सरल और मिलनसार हैं। स्मरण और मेधा शक्ति असाधारण है। कलकत्ते के मेरे परिचितों में सबसे अधिक पुराने रामकृष्ण भक्त कोमल हृदय श्री विष्णु दयाल जी पोद्दार के सौजन्य और प्रेमपूर्ण आग्रह के वश मैंने कृपाशंकरजी का प्रवचन सुना और उनसे परिचय बढ़ाया। परस्पर भावना के फलस्वरूप उन्होंने विद्याप्रेमी

मंडलियोंके सामने मनोहर प्रवचन किये, जिससे ज्ञानश्रोन करने वाले नरनारियों को बहुत संतोष हुआ। इन बातों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं कि हम अपने अच्छे ग्रंथों की, टीकाओं की प्रवक्ताओं, की और कार्यकर्त्ताओं की जितनी कदर करेंगे उतनीही हमारी, देश और परदेशों की भी भलाई होगी, क्योंकि वे ही नवतुलसी दल हैं। इतना ही नहीं, वे ही रामायण के पथिगत हैं और वे ही राजपथ हैं। फिर रामायण के अन्तः स्थित हैं। वे चलते बोलते रामायण हैं।

रामायणका कौतुक है कि उसमें साधारण मनुष्य भी अपने रास्ते आप निकाल सकता है और अपनी यात्राओं द्वारा अद्भुत दृश्य देख सकता है। आज यदि हम सुनें कि पर्वतारोहण विशेषज्ञ एव्हरेस्ट की चोटी तक चढ़ गये हैं तो उससे एक प्रकार का आनन्द होगा। परन्तु यदि यह देखा जाय कि कोई आरामतलब जीव भी गिरिवर गहन पर भगवान की दया से कुछ ऊंचाई तक चढ़ आया है तब जनता को विशेष प्रकार का निजी उत्साह मिलेगा। आधुनिक विद्याध्ययन प्रणाली में पला हुआ, सांसारिक जीवन का प्रेमी मैं एक अति साधारण व्यक्ति हूं। मेरे छात्र जीवन में रामायण के प्रति बड़ी अश्रद्धा का विष मनमें बैठा दिया गया। आगे चलकर बहुतेरे सुन्दर पदों को सुनकर आनन्द तो आता, परन्तु मेरे वातावरण में रामायण के विरुद्ध नाना भावनाएँ और आक्षेप विचरण करते रहते थे। फिर एक समय आया जब अन्य ग्रंथों के दर्पण में रामायण का रूप सुन्दर दिखने लगा। तत्पश्चात् जिन्हें नवतुलसी दल कहा है, उनकी भी कृपा हुई। यों साधारण परिचय होते हुए

भी जो लाभ और रस मैंने पाया है, उसका संक्षिप्त वर्णन इस लिए करता हू कि अनेक विद्यार्थी और सहृदय नरनारी की वही अवस्था है जो मेरी थी और है। वे मेरी बातों में दिलचस्पी लेंगे यह मुझे आशा है। एक लाभ तो अवश्य होगा। मैं जो लिख रहा हू वह जिज्ञासा रूप से, न कि समाधान रूप से। यदि सत्य के अनुसंधान में किसी दिशा से सहारा मिलेगा तो उससे मुझ सरीखे अनेक जिज्ञासुओं को संतोष होगा। पाश्चात्य विद्या के छात्रोंके बीच आजीवन रहकर इतना तो कह सकता हू कि जो प्रश्न मेरे दिल में उठे हैं वे ही लाखों मुख के प्रश्न हैं। यहा तक कहा जा सकता है कि ये साधारण प्रश्न हैं। उनके जो ही उत्तर सामने आवेंगे उनको लाखों आँखें बड़ी गौर से देखेंगी, किसी के प्रभाव के दबाव में नहीं आवेंगी। आज की जनता अंध भक्त नहीं है, नेत्र भरकर देखने वाली है। वह नेत्र भरकर ही देखेगी, यह तो हर्ष की बात है।

दौड़ती चाल से देखने से रामायण के रास्ते कुछ पुराने से मालूम होते हैं अवश्य, परन्तु फिर भी जो शोभा देखने मे आती है वह निराली है। संसार में ऐसा कोई धर्म नहीं है और ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है जिसके विधि-विधान में पुराना-पन न आया हो। परिवर्तनशील ससार में यह होना अवश्य-म्भावी है। इस कारण कोई भी समझदार मनुष्य किसी अच्छे ग्रंथ या वाणी से लाभ उठाना नहीं छोड़ता, हंसकी तरह सार तत्वों को लेता है, अनुपयुक्त बातों को छोड़ता है। जिन बातों का बाहरी रूप बदला है उनको वह रूपांतर से ग्रहण करता है। एक उदाहरण लीजिए। प्रजातंत्र देशों में राजाओं की प्रभुता की

बात अक्षरशः अनुकूल नहीं पडती। उन वाक्यों को राज्य सत्ता के विषय में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार से रामायण के रास्ते आज भी प्रशस्त हैं। उनपर समूचा ज्ञान, समूचा विज्ञान सुख पूर्वक चल सकते हैं। कोई चाहे कि समूचा विज्ञान एक ग्रंथ में सदा के लिये आ बंधे तो वह असंभव है। विज्ञान का अंत तो है ही नहीं। उसकी बडी चचंल गति है। आज जिसे सत्य माना जाता है उसे कल झूठ, परसों फिर सत्य। विज्ञानकी क्रियाएँ, असंख्य प्रयोग और छिपी दैवी शक्ति प्रकाश मे आने के लिए मानव शक्ति के अधीन हैं, वानर सेना हैं।

"वानर कटक उमा मैं देखा।
सो मूरख जो करन चह लेखा।"

उनको सेतु से सुगमता है। सेतु भी अनिवार्य नहीं है। आवश्यकता पडने पर वैज्ञानिक खोज विचित्र वा अटकलपजे तरीके से अपने ध्येय पर पहुच जाता है। परन्तु मानस-संयम का सेतु हो तो कार्यमें बडी सहायता मिल सकती है। इसलिये आज जब सब कोई कह रहे हैं कि भारत में क्या श्रेष्ठ क्या साधारण (सभी व्यक्तियों पर खर (कठोरता), दूषण (नैतिक पतन) और त्रिशिरा (सोचे कुछ, कहे कुछ और करे कुछ) का प्रभाव छाया हुआ है तब रामबाण महौषधि बडे काम की होगी।) और यदि रावण (दुष्ट विज्ञान) सारे जगत को सता रहा है तब तो रामायणी सेतु से क्यों न सहायता ली जाय? यह रामायण की चिरकालिक उपयोगिता है। रामायण के श्रद्धालु दरिद्र मनुष्य के मन मे पराये लाखों रुपये हाथ मे आने पर भी विकार के अंकुर तक नहीं उगते हैं, यह तो हजारों बार जनता की देखी हुई बात

है। आज साधारणत जो दरिद्र नहीं हैं उनका भी यह हाल है कि बीमारी ने बढ़कर महामारीका रूप धारण कर लिया है। क्यों नहीं रामायण का असली बल आजमा लिया जाय? एक बात देखी गयी है कि कुछ लोग जितना ही रामायण इत्यादि पढ़ते सुनते हैं उतना ही उनका मर्ज बढ़ता जाता है आसुरी सम्पदा बलवती होती जाती है। इसका कारण है कि वे वास्तव में उस सम्पदा के प्रेमी हैं। वे सोचते हैं कि हमने जो कुछ पाप किया है वह इस श्रवण से घुल जाता है और हमने अच्छे ग्रंथ सुनकर और कुछ दान देकर इतना बड़ा काम कर लिया है कि लोगों से कठोरता करें और कुछ जुआचोरी करे तो हमारा क्या बिगड़ सकता है? बलपट मिलान पर नफे में ही रहेंगे। भगवान प्रेम और सचाई का कर मांगता है, सही, परन्तु उसे भी भुलावा में डेलो। दुनिया यों ही अच्छी चलती है। इस प्रकार सोचने वालों के इष्टदेव जिनका नाम उनके मुख में लगा ही रहता है उनसे उसी प्रकार कठोरता और धोखा करेंगे जैसा व आज दुनिया के साथ कर रहे हैं। मैं कड़ी बातें नहीं कह रहा हूं। ये अक्षरशः सत्य हैं। हम बहुतों का यही हाल है। उनके पैरों के नीचे से रामायण के रास्ते खिसक जायेंगे। व कहते ही रह जायेंगे कि राम समदर्शी हैं। राम समदर्शी का और ही अर्थ लगाता है। राम को उनके नाम की आवश्यकता नहीं, उनके अभिमान का महत्व नहीं, उनके प्रेम की चाह है,—अपने लिए नहीं, प्राणियों के लिये। यह राम मांग है।

—:०:—

एक समय महीतल पर रामजी का पूरा दरबार लगा। बहुत दिनों से कोई अपना दुखड़ा रो रहा था। कोई प्रश्न पर प्रश्न पूछ रहा था और संतोषजनक उत्तर के बिना व्याकुल था। कोई कुछ माग रहा था, कोई कुछ। जो जानकार था वह हठ कर गया कि राम जानकी के दर्शन पाकर ही संतोष लूंगा। इसलिए श्रीराम को दलबल समेत दरबार करना पडा। बंदीजन बिना दरबार कैसा ? उन्होंने रीति अनुसार घोषणा कर दी—

"मूक होइ बाचाल, पंगु चढे गिरिवर गहन।
जासु कृपालु दयाल, द्रवहुं सकल कलिमल दहन।"

इतनी स्पष्ट वाणी और ऐसा उत्साह वर्धक अधिकार पाकर भी सभासद् मूक रहे। तब एक विचित्र घटना घटी। उसी की यह कहानी है—देखते ही देखते तुलसी की मालाएँ चुपचाप रामके गले पड गईं और छाती पर बस गईं। "उरन्हि तुलसी माल"—एक नहीं सात मालाएँ। जिसने ही देखा उसकी बोली बंद। यहा तक कि सीताजी की यह हालत थी कि "गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी"। सीताजी की वाणी रूपी भ्रमरी को उनके मुखरूपी कमल ने रोक रखा है। उन्होंने गणेशगोसाईं का स्मरण किया जिससे कि मनोकामना सिद्ध हो, परन्तु मालाओं ने तुलसी गोसाईं का स्मरण किया। यहाँ तक तो मालाओं की जीत रही। गंभीर राम ने कुछ मुस्करा दिया। स्थिति का रूप बदलना आरम्भ हुआ। स्वभाव से लाचार तुलसी की मालाएँ कुछ बढ कर बोलने लगीं—"आज हमही हम दीख रही हैं। जानकी की जयमाला कहां है ? रामकी शोभा हम बढा रही हैं;

राम से नाम बड़ा है तो तुलसी से हम मालाएँ बड़ी हैं। *भगवान ने हमें भरी सभा में छाती से लगाया है। नराधिप की सात नारियाँ बनकर हमारा नाम जगत्प्रसिद्ध हो गया है"। तुलसी को न हर्ष हुआ, न शोक। तुलसी-हृदय मूक वाणी से कहता है— "तुम्हारा सुख तुमही को रहे। हमारा स्थान तो चरणों में है भगवान के हृदय में कान नहीं हैं। वहां श्रुति नहीं, मौन ही मौन है। हमें दुःख सुख की बहुत सी बातें कहनी हैं। नाना गहन वन और कठिनाई के पहाड़ लांघने हैं। श्रीराम से हमें कुछ मतलब भी निकालना है। हमें जो अर्थ चाहिए वह उन्हीं की दया से मिलेगा, यह कोई बड़ी बात नहीं है कि जिस छाती पर भृगुजी की लात के चिह्न का धारण है, जिस छाती द्वारा 'सीय जयमाल' सारे शरीर में रम गई वहीं पर तुलसी की मालाएँ विराजित हों। यह तो राम की पदार्थ भावना है। हमें तो सत्संग की चाह है। सच्चे मनुष्य पदकंज के मधुप हैं। हमारा जीवन यदि सगुणपदावली के आनन्द में निभता रहे तो तुम सात काँड की अध्यात्म विद्या राम हृदय के मर्म का ध्यान करती रहो। राम हृदय सरल होते हुए भी बड़ा गूढ़ है। संकोच छोड़ कर कह दूं, वाचाल भी है। वह यहां तक कहता है कि पापों और कुरीतियों की होली जला दो। नित्य आग से खेल करो। उसका

*टिप्पणी :—मर्यादा पुरुषोत्तम द्वारा भरी सभा में सात नारियों का आलिंगन बड़ा ही मार्मिक तथा गूढार्थ का व्यञ्जक है। ये नारियां हैं —"कीर्तिश्री वाक्स्मृतिर्मेधाधृतिक्षमा"। ये नारियां (दैवी सम्पदाएँ) पुरुषोत्तम की चिर आश्लेष्य प्रेयसी हैं। ये जिस किसी समय आवें, पुरुषोत्तम इनका आलिंगन करेंगे ही। रामायण के सातों कांडों में इनका क्रमशः विशद विवेचन है, जिसका स्पष्टीकरण विद्वान् लेखक ने अन्यत्र किया है।—प्रकाशक

एक अच्छा सा नाम भी रख दिया है; वह है यत। और कहता क्या है कि अपने मे भी आग लगा लो। उससे जलोगे नहीं। दिव्य हो जाओगे। बुद्धि मैली और ठस नहीं रहेगी। अथर्व घडी की तरह सदा ठीक चलेगी। आत्मा की सदा के लिये रक्षा हो जायगी। इस जप का भी एक सुन्दर नाम रख लिया है, वह है गायत्री। राम की बातें कहाँ तक कहूँ? कहने को तो कहते हैं कि "हम अपनी प्राकृतिक व्यवस्था अपने सबसे बड़े प्रेमीपर प्रयुक्त करते हैं। हम अग्निसे बहुत काम लेते हैं। विपद मे रक्षा, संदेह मे परीक्षा। उस अग्नि का सूक्ष्म रूप सबको समझ में नहीं आता। वह तपोबल की बात है। उसका इंधन भी विचित्र है। उससे जलता है मैल। उससे ठंढी होती है शुद्ध बुद्धि। अच्छे आदमी तो उस अग्नि को कहते हैं 'आपोभवन्तु पीतये' अर्थात् अमृत बन जाव और हम तुम्हें पी लें। उसके नाना रूप और गुण हैं। वह विद्युत की तरह चरणोंमे रहती है। वेद के पदों मे अग्नि को प्रशंसा देख कर नासमझ लोग जल भुनकर खाक हो गये हैं। फिर भी तपोबल महान है"। तुलसी ने राम से कहा, "तुम तो वन मे चौदह वर्ष की लीला कर गये। आगे चलकर वन मे गीता की वशी भी बजावोगे, फिर वन से हट भी जावोगे। बहुत सी भागवती लीलाएँ करोगे। परन्तु मेरा वन से संबन्ध है। मैं जिस वन में रहूँ उसी मे कैसे आग लगाऊँ? तुम्हारे प्रेम के प्रत्यक्ष सहारे बिना यदि मैं अग्नि कांड रच दूँ तो भय है। सात काड सुनकर अभी कलि समाज पूछ रहा है कि राम कहाँ हैं? अब यदि मैं तीव्र ज्ञान की अग्नि लगा दूँ तो दुनिया माया जल से बुझाने लग जायगी, क्योंकि वही उसका स्वभाव है। इसलिये वन को अच्छे फूलों फलों से

भरपूर कर रहा हूं। "जैसे पक्षी की बोली पक्षी जाने। वैसे माया मन की भाषा मनवासी जानते हैं। इसलिये मैंने तो तुम्हारा विवाह कराया, तुम्हें स्त्री वियोग में रुलाया, तुम्हें खूब छकाया और जिताया।" फिर तुलसी बहुत सी नजीरें बताने लग गये। गणिका की, व्याध की, गीध की, गज की, नाना जातियों की। उनसे उपस्थित जनता को ऐसे बढ़ावा मिला कि सब अपनी अपनी राम कहानी कहने लग गये। ज्ञानी भी ऐसे उत्साहित हुए कि उनकी रचनाओं का तांता बंध गया। नारदजी वहां पहुंच गये थे और उन्होंने प्रस्ताव किया कि बारी-बारी से एक एक जीव बोले तो अच्छा हो। उसपर लोगोंने बहुमत से निश्चय किया कि नारद जी की बारी अन्त में आवे। वे शेष में बोलें। इस तरह नारद भगवान को भूतल पर प्रत्यक्ष रूप से आना छोड़ देना पड़ा। इससे उनका कुछ नहीं बिगड़ा, क्योंकि वे बारी-बारी घट घट में पदार्पण करते गये। फलतः दुनिया में इतने मत मतान्तर प्रचारित होने लगे कि उनका सामंजस्य वा भेद बताना या उनका उपयोग क्रमशः साधारण मानव शक्ति के बाहर हो गया। उन्हें देखकर सातों मालाएं चिन्ता में पड़ गईं। उनका गर्व दूर हुआ। तब एक विलक्षण चमत्कार हुआ। राम की प्रेरणा से तुलसी ने सात कांड रामायण को जनता के लिये अंतिम रूप देते समय उसमें नाना प्रकार के मत मतान्तरों का इतिहास और खंडन मंडन प्रसंगानुसार समाविष्ट कर दिया। यों रामायण के द्वारा धर्म के गहन गंभीर समुद्र को पार करना संभव हो गया। धर्म का इतिहास सुलभ रूप में जनता के सामने जनता की भाषा में आ गया। और यों नव तुलसी दल का निर्माण होना आरम्भ हो गया। कलि का काल स्पष्ट दीख रहा है। आगे के लक्षण भी अच्छे नहीं हैं। युगावतार कब किस रूप में होगा उसके विषय में भविष्य वक्तागण वाचाल हैं। परन्तु

उनका कहा सत्य भी हो तो उससे हम आज के जीवों को कोई सांत्वना नहीं : एकदेशीय एकसामयिक आंशिक भारतीय कलि अवतार यदि हो भी जाय तो उसके विषय में पुरानी बातें पुरानी पड़ गईं। आज के कलियुग ने भविष्य वक्ताओं को अभी से ही हरा दिया। केवल माया से नहीं, परन्तु मोह माया मिश्रित विज्ञान बल से, जो वास्तव में रावण बल है। वह ऐसा विज्ञान भक्त था कि उसका परम शत्रु भी यदि विज्ञान कर्म करे तो वह वहाँ आये बिना न रह सकता था। यहां तक कि सहायता किये बिना न रह सकता था, चाहे वह कर्म उसी के घात के लिए हो। आज यदि कोई महापुरुष हाथ में तलवार और मुख में अग्नि और घोड़े की सवारी लिये आवें तो संग्राम के पहले ही उनकी हार हो जायगी। वहाँ तक नौबत ही नहीं पहुँचेगी। अतः *कल्कि अवतार के स्वरूप का सच्चा अर्थ समझना होगा। इसी तरह* आज वह नरदेह, स्त्री वियोगदुःख और बन्दरों की साहायता की पद्धति के बदले नये हेतु, नई योजना, नये बल, और नयी व्याख्या से काम लेना होगा। ऐसा साधारण बुद्धि कहती है। राम की लीला राम ही जानें। परन्तु जो पूर्व लक्षण दीख रहे हैं उनसे यही धारणा बन रही है कि कम से कम यह संभव है कि अजीब रूप से क्रान्तिकारी यहां आवेंगे। न एक विशिष्ट शरीर, न तलवार, न अग्नि, और न घोड़ा ही होगा। करोड़ों मनुष्यों के रूप में, हाथ में गीता, मुंह में भगवान और नवा तुलसी दल के पीठ पर प्रकट होंगे। नयी व्याख्या और नया आचरण विजय के लिए पर्याप्त होंगे।

नव तुलसीदल पर इतना भार! वे तीक्ष्ण तीक्ष्ण होते हुए भी बड़े कोमल हैं। भारत माता पूछती है कि इतने बड़े युद्ध को इतना छोटा दल कैसे जीतेगा। नव तुलसी दल कहता है, माता, आशीर्वाद दो। हमें अभी बहुत काम है।"

तुलसी दास जी साधारण पाठकों के लिये बड़े सरल हैं, परन्तु विद्यार्थियों के लिए बड़े गहन हैं। वह गहनता क्लेशदायक नहीं है। रामायण के गहरे पानी में जो जितना जायगा, उतना ही आनन्द पायगा। इस दृष्टि से अनुसंधान कार्य सर्वत्र चल रहा है। साधारण मनुष्यों की चर्चा और जिज्ञासा से वह कार्य आगे बढता है, इसलिये मैं कुछ प्रश्न छेड़ने और कुछ विचार प्रकट करने की धृष्टता करता हूं।

बालकांड मे तुलसी दासजी पाठकों की बडी कठिन परीक्षा लेते हैं। यह तो कहना बहुत सहज है कि बालकांड में मंगलाचरण है, फिर गुरु वंदना, फिर भलेबुरों की वन्दना। फिर ग्रंथ कब बना कैसे बना और उसकी विशेषताएँ क्या हैं। फिर राम के व्यक्तित्व से रामभक्ति का साहित्य बडा है। राम की महिमा शिव बताते हैं और शिव की महिमा राम। आजतक विद्वानों को कहते सुना है कि शैवों और वैष्णवों के झगड़ों को मिटाने के लिए यह प्रसंग है। ठीक भी है, परन्तु उतना ही नहीं है। फिर हैं राम के अवतार के हेतु और राम का जन्म लेना, बाल्यकाल के चमत्कार और जनकपुर की घटनाएँ, सीताराम का परस्पर दर्शन, सीता का स्वयंबर, राम द्वारा धनुषभंग, परशुराम का क्रोध तथा राम भक्ति, चारो भाइयों का विवाह और अयोध्या लौटना। इन उपकथाओं मे अनेक गूढ सन्देशों की ओर संकेत है। इसमें किसी को कोई आपत्ति

नहीं हो सकती। इनके उद्भव और प्रयोजन के रहस्यान्वेषण के लिए गंभीर अनुसन्धान की आवश्यकता है।

वैसे तो रामायण के तीन मुख्य भाग हैं। पहले में राम का परिचय। दूसरे में उनका मानवीय चरित्र। तीसरे मे उनके मन की बातें अर्थात् उनका मानस। इस प्रकार से ग्रंथ का नाम रामचरित मानस ग्रंथ के तीन भागों का परिचायक है। इससे पता लगा कि रामायण के तीन रास्ते आरम्भ से अंत तक हैं। एक है ब्रह्म विद्या का, दूसरा है राम की कहानी का और तीसरा है मनोविज्ञान का। इसकी स्मृति बनाये रखने के लिए कहानी मे कहीं कहीं विस्मय में डालनेवाली बातें हैं। एक उदाहरण लीजिये। बालि को राम ने व्याधा की भाँति छिपकर मारा। इस पर बड़ी शंका होती है। परन्तु हम जगत के अनुभव द्वारा देखते हैं कि बहुतेरे बलिष्ठ पुरुष धर्म का ज्ञान रखते तो है, परन्तु असली भक्ति नहीं होने के कारण दोषी हो जाते हैं। वे बुरा काम जब करते हैं तब तो कर गुजरते हैं। परन्तु एक समय अचानक उनपर वज्रपात होता है। तब बहुतों के मुख से सुनने में आता है कि गजब हो गया। ऐसे अच्छे मनुष्य के इतने से कसूर के लिए ऐसी सजा, सो भी न मालूम, किधर से आई। भगवान के घर मे न्याय नहीं है। ईश्वरी न्याय कोई वस्तु नहीं है। ईश्वर है कि नहीं, इसीमें सन्देह है। यदि है तो ऐसा छिपा हुआ है कि उसे भूल जायें तो कोई भूल नहीं। कथा प्रेमियों को छकानेवाले ऐसे कई प्रसंग हैं। प्रारम्भ से अन्त तक ऐसी गहराई भी है कि मानस से पूरा आनन्द और लाभ पाने के लिए केवल उसके जल और उनकी

सुन्दर लहरों को देखने से काम नहीं चलता। जल है कथा। लहरें हैं शब्दों की बहार। इनमें हमें स्नान करते रहना है। परन्तु मोतियों के लिये गहरी डुबकी लगानी पड़ेगी।

रामायण पाठ के तीन बड़े रास्ते हैं। एक सात कांड का, एक नवधा भक्ति का, जिसका नवाह्न पारायण होता है। एक तीस सर्गों का मास पारायण। इनको बिगाड़ने वालों ने कसर नहीं रखी। सात कांडों में इतने क्षेपक भर दिये कि इन्हें निकालना कठिन हो गया। पारायणों के विश्राम गूढ़ अर्थ के अनुसार निर्धारित हुए। इन अर्थों की सूचना रामायण के पदों से ही मिलती है। फिर भी पाठ मे समान समय लगे। इस ख्याल से विश्रामों में भी हेर फेर हुए। इनसे जो अनर्थ होता है उससे गूढ़ अर्थ तो हाथ से प्राय निकल जाता है। हृदय में मुख्यत कथा के अश बसते हैं, न कि सीताराम के गुणोंपर अद्भुत प्रकाश, जो पारायण विधिमें हैं। मुझे श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार के गीता प्रेस से मुद्रित और प्रकाशित सस्करण में जिस प्रकार से पारायण विश्राम दिये हुए हैं उनसे बड़ा लाभ हुआ। रामायण के उस सस्करणसे मुझ जैसे लाखों अज्ञानियोंके हाथों में इस अनमोल ग्रथ रत्न का रहना सभव हुआ यह कम उपकार नहीं है।

सात कांडों में ज्ञान के सात सोपान हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें ज्ञान की बातें हैं। इसीलिए कई लोगों को कहते सुना है कि उनमें दार्शनिक विषय हैं, साधारण पाठकों की रुचि की बात नहीं। यह भारी भूल है। ये सात सीढ़ियाँ बड़ी ही रामणीक, हृदय ग्राहक और रोचक हैं। (१) सप्त सोपानों में

से प्रथम है शुभेच्छा, जिसको तुलसी दासजी ने सुरुचि कहा है। इसलिए विषय यदि रुचिकर नहीं हुआ और जन्मन को अच्छा और लाभदायक न हुआ तो सुरुचि हुई कैसे ? इसलिए आरंभमें सभी भाव आ जाने चाहिएँ : धर्म तरु का मूल होना चाहिए। चारो वेदों और स्मृतियोंका सार इस बाल कांडके बारह भागों में है। (२) द्वितीय है विवेक। इससे भले बुरे का निर्णय होता है। संसार में जितने प्रकार के संबंध हैं उनको नव भागों में बाँटा गया है। उन सब के साथ कैसा व्यवहार हो उसका फैसला समबुद्धि करती है। बुद्धि यदि वास्तव में सम हो तब कोई भी उसका विरोध नहीं कर सकता। उसे कोई हरा नहीं सकता। इसलिए वह अयोध्या है। उस बुद्धि में हजारों ज्ञानियों और भक्तों का वास है। यह श्रद्धा रूप से शास्त्रों में और सत्संगों *में चमकती हुई शिवजी के रामाक में है। वही प्रसन्नता रूप* से राम के जीवन में है। वह है राम की मर्जी। नियम से कभी नहीं डिगती। भक्त उसमें नवधा भाव से रस लेते हैं। वे भी किसी से हारने के नहीं। इसलिए जैसे सम्पूर्ण रामायण के नव भाग हैं वैसे ही अयोध्या कांड को स्वतंत्र रूप से देखा जाय तो उसके भी नव भाग हैं। यह बुद्धिका कांड है। (३) तृतीय है तनुमानसा। इस प्रकरण से कई भले आदमी ऐसे घबड़ाते हैं कि इसका पाठ भी नहीं करते। यह रामायण का आरण्यक भाग है। संयम का विषय है। स्वयं भगवान भी यदि नर लीला करते हैं तो उन्हें संयम का आदर्श पालना पड़ेगा। वह भी लीला के अन्तर्गत है। इसमें अष्टविध मृत्यु के दमन के उपाय हैं। जयन्त द्वारा अपमान (मृत्यु का पहला रूप) राम-मर्यादा से दबाया जाता है, निंदा (मृत्यु का दूसरा रूप)

अत्रिजी की द्वादश भाव स्तुति से और अनसूया वृत्ति से। यही हाल मृत्यु के बाकी ६ प्रकारों का है। एक बड़े मार्के की बात यह है कि अरण्य काड में स्त्रियों के चरित्र पर पूर्ण प्रकाश पड़ा है। वनवासियों से स्त्रियों का सहयोग बड़े महत्त्व का होता है। यों तो संसार मात्र ही एक वन है। इसलिए सभी आरण्यकों में मनुष्य मात्र के लिए स्त्रियों के विषय का ज्ञान है। राम ने सीता—आदर्श पत्नी—को अपने हाथों से चुने, अपने हाथों से गुथे फूलों की माला पहनाई और स्फटिक शिला पर बैठाया। इससे बढ़कर सम्मान जगत में नहीं हो सकता। (४) चतुर्थ है सत्वापत्ति। यहाँ काम की चीजें मिलती हैं। भगवान को सेवक भक्त और भक्तों को भगवान। इस काड मे आठ प्रकार से मरे हुए को केवल बचाने वाली नहीं, परन्तु योगबल धारण कराने वाली विशुद्ध विज्ञान शक्ति है। इसीलिए इसका नाम किष्किधा है। इसके पहले तीन काडों में कालबल प्रधान था। इसलिए शिव की महिमा पहले वर्णित है। यहाँ से राम की प्रभुता प्रत्यक्ष और प्रधान होती है। (५) पचम है असंसक्ति। इसी मे सारी सुन्दरता है। संसार में पाप उठते ही रहते हैं, परन्तु उठते ही दलन कर दे तभी जो अवस्था होती है वही सुन्दर है। कृपा शंकरजी सुन्दरकाड को हनुमान जी के आठ गुणों की व्याख्या बताते हैं। यह पूर्ण युक्तिसगत है। इतना ही युक्तिसंगत वह दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार सीता का प्रेम क्या राम क्या हनुमान सभी को प्रेरित कर रहा है। यह तुलसी दास जी का मार्मिक अर्थ है, जिसकी झलक इन्होंने बालकांड के आरम्भ के पाँचवें श्लोक मे और सुन्दर कांड के आरम्भ के दो श्लोकों में दी है। विलक्षणता यही है कि जब हनुमानजी अतुलित बलधाम हैं तब राम उनके हृदय

मे शांत बने बैठे है। हनुमान स्वर्णशैलाभदेही हैं, उस समय राम शाश्वत रूप से विभीषण के यहाँ दीखते हैं। यों ही यह अनुपम सुन्दर लीला चलती है। उसको सीताजी चलाती है। समुद्र जैसी प्रकृतिवाला भले ही कहे कि स्त्री ताडना की अधिकारिणी है। यह तो समुद्र का खारा स्वभाव है। राम का मत कुछ और ही है। (६) तत्पश्चात है पदार्थ भावना। यह लंकाकांड है। समूचा युद्ध शांति स्थापन के लिए है। लंका का विचित्र इतिहास रहा है। रावण के द्वीप को राम का और फिर विभीषण का द्वीप बनाया जा सकता है। इसलिए राम का बल प्रधान है। परन्तु शिव आदि से अन्त तक ध्यान मे है। (७) सप्तमी है तुर्यगा - निगुणातीत अवस्था। वह उत्तर कांड मे है। किसी एक गुण के बंधन मे राम नहीं रहते। वह चाहे सत्वगुणही क्यों न हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे हीन कर्म करते है। इसका असली अर्थ है कि यथार्थ काम करने में वे अपने सुख की ओर नहीं देखते। सीता-त्यागका रूपक अर्थ ही लेना चहिए। शास्त्रों में ऐसे अनेक प्रसंग आते है, जो जानबूझ कर हेतुके से बनाये हुए है, जो कि पाठकों के दिल को हिलाकर शब्दार्थ का त्याग करके भावार्थ ग्रहण करने को बाध्य करें। जैसे वेद मे कहा है, भाइयों का वध करो। उसका एक ही अर्थ है कि सहजात द्वन्द्व युक्त कर्मो का अंत करो, एकता को प्राप्त करो। यह भी वेद मे उसी प्रसंग में कहा गया है।

भक्ति के नव भाग बड़े सरस है। और मास पारायण की रोचकता का कहना ही क्या है! आगे उनके बारे मे कुछ शब्द निवेदन करने का विचार है।

—:००:—

इतिहासों में सबसे बलिष्ठ इतिहास है धर्म के असली रूप का और सबसे गंदा है धर्म के आडंबरी रूप का। यहां तक कि संसार की दुर्गति का प्रधान कारण है धर्म का विकृत रूप। आर्थिक संघर्ष इसके प्रायः समानान्तर जाता है और दोनों मिल जुलकर काम करते हैं। इस बात में एक होकर अनेक प्रकार की फूट पैदा करते हैं। धर्म के नाम में दुःख देनेवाले दानव और फूट पैदा करनेवाले दैत्य हैं। अंधकार पैदा करके काम बनाने वाले निशिचर और अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म मानने वाले राक्षस हैं। तुलसी दासजी ने अपने समय तक का धर्म का प्रबल इतिहास तो लिख ही दिया, अपितु भविष्य की भी कुछ सूझ दे दी जो अब तक के लिए पूर्णतः लागू न भी हो तो सारांश में सत्य है। गत सौ वर्षों का इतिहास बड़े महत्व का है। एक ओर ज्ञान के मिथ्याभिमानियों के कारण ज्ञान बदनाम हुआ और मोक्ष के नाम तक से लोग दूर भागने लगे। कर्म का दायरा रहा नित्य कर्म में और किसी-किसी घरमें हवन रूप में उसका भी अर्थ स्पष्ट न होने के कारण दिनोंदिन ह्रास होता गया। संस्कारों में विवाह से इतना प्रेम हुआ कि गुड्डा-गुड्डी के विवाह होने लगे। पढ़े-लिखे मनुष्योंके दिल में भक्तिके नाम से चिढ़ कम न रही। भक्तों के विषय में यह समझा गया कि आप डूबे सो डूबे, भोली-भाली स्त्रियों को भी डुबायेंगे। भक्ति को निकम्मा और गुमराह बनाने का सहज साधन माना जाने

लगा। इसीलिए आज भी जहां भक्ति का सत्संग होता है वहाँ नई रोशनी वाले कम योगदान देते हैं। यह दोष भक्ति का नहीं है, वरंच मनुष्यों का है। गत सौ वर्षों में बुद्धि की स्वतंत्रता और साहस के विकास में वृद्धि हुई। वह बड़ा से बड़ा लाभ हुआ। साथ ही साथ अच्छे ग्रंथों के अंगभंग, कुछ लोप, कुछ परिवर्त्तन, कुछ क्षेपक और क्रम में हेर-फेर तो पदपद पर हुए। सत्य साहित्य मे संख्या और क्रम अर्थ प्रकाश में बड़े सहायक हैं। यह बात भूली जाती है। मुद्रण यंत्र के कारण विद्या-प्राप्ति सुलभ हुई। प्रचार का कार्य अभूतपूर्व गति से अग्रसर हुआ। आश्चर्य की बात है कि शास्त्रों की जानकारी उतनी ही कम होती गई। आज समय ने फिर पलटा खाया। इन्ही द्वन्द्वों के कारण आज दिन, जब पुनः शास्त्रों की ओर ध्यान जा रहा है तब समयानुकूल और बुद्धि के अनुसार अर्थ के अनुसंधान की माग है। यह हर्ष की बात है। सबसे अधिक आनन्द इस बात का है कि स्त्रियाँ आगे बढ़ रही हैं और वे सर्व श्रेयस्करी होकर रहेंगी, जैसा सीताजी के विषय मे तुलसीदासजी ने कहा है।

(भक्ति के नौ प्रकार के अनुसार नवाह पारायण बनाया गया।) बालकाड के १२० (क) दोहे तक प्रथम भाग है। वह है श्रवण अर्थात् श्रुति का विषय। उसमें आरम्भसे ही चारों वेदों का सार है। मैं पहले एक बार बता चुका हूं कि लोग कहते हैं कि इस भाग मे तो केवल वन्दना तथा प्रस्तावना है। रामचरितमानस कब बना, कैसे बना इत्यादि बातें हैं। ठीक है। यह तुलसीदासजी का कौशल है कि सरल से सरल और गूढ़ से गूढ़ बातें एक ही शब्दों मे प्रकट कर देते हैं। करते हैं गुरु की वन्दना, परन्तु गुरु

कौन है ? गुरु-पद क्या है ? गुरु-पद मूल वाक्य को कहते हैं। इनमें चार गुण हैं :—सुरुचि, सुवास, सरसता और अनुराग। इन में से सुरुचि ऋग्वेद का विषय है, सुवास यजुर्वेद का, सरसता सामवेद का और अनुराग अथर्व वेद का। द्वितीय भाग है १२० (ख) दोहे से २३६ दोहे तक। इसमें कीर्त्तन (संतवाणी) है।

तदपि संत मुनि वेद पुराना।
जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना।

, उसी का सारांश है तृतीय भाग। इसके बाद २५८ दोहे तक स्मृतियों की बातें हैं।

जिन्हके रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी।

माताएँ तो कहती ही रह गईं, 'सकल अमानुष करम तुम्हारे।' उसके बाद भक्ति का चौथा प्रकार आता है, अर्थात् पाद सेवन। बालकांड के शेष तीन दोहे उसके प्रथम चरण हैं। यह चरण है तो बहुत छोटा, परन्तु अधिक से अधिक मार्मिक और महत्व का है। इसमें इने गिने शब्दों में तुलसीदास जी ने धर्म का इतिहास सार रूप से दे दिया है। जैसे दशरथजी ने चारों भाइयों को गोद में लिया वैसे अनादि काल से यम-नियम की प्रभुता रही और चारों पुरुषार्थों का आदर रहा। संसार भर के सभी धर्म इस बात को मानते हैं। फिर भारत का धार्मिक इतिहास आरम्भ होता है। पहले वशिष्ठ अर्थात् पुरोहितों की सत्ता, फिर विश्वामित्र अर्थात् क्षात्रधर्म की सत्ता। विश्वामित्र की गायत्री ने अद्भुत चमत्कार किया।

उसका इतिहास बड़ा ही विस्तृत और उज्ज्वल है। वशिष्ठ कह रहे हैं और राजा तथा समूचा रनिवास सुन रहे हैं। यों एक ही शब्द से तुलसीदासजी ने बता दिया कि उस समय स्त्री पुरुष साथ बैठकर धर्म-कथा, अर्थात् वेद का उपदेश सुनते थे। सूर्य को वरेण्य मानने के कारण सूर्यवंशी के हित की बात हुई। सत्य को सर्वोपरि माना गया। सूर्य और सत्यके एकत्वसे विज्ञान को बड़ा प्रश्रय मिला। कहाँ तक कहा जाय? समूचे ज्ञान-विज्ञान पर, समूचे जगत व्यवहार पर गायत्री बुद्धि की छाप पड़ गई। विश्वामित्र क्या थे, क्या हो गये। सूर्य को वरेण्य मानने से एक और निष्कर्ष निकला। वह हुआ अवतारवाद का। जैसे सूर्य देवलोक मे रहता हुआ पृथ्वी पर आता है अर्थात् अपनी रश्मियो द्वारा पार्थिव लीला करता है वैसे ही परब्रह्म का नररूप मे आना कौन सी बड़ी बात है? इस मत के बड़े ओजस्वी प्रतिपादक हुए वामदेव ऋषि। * वे कहा करते थे कि मैं सूर्य हूँ, मैं मनु हूं। इसका उल्लेख बृहदारण्यक मे सुगम रूप से मिलता है। यह हृदय को फड़का देनेवाली बात है। फिर तुलसी दासजी 'मंगलमोद उछाह नित' की ओर इशारा करते हैं। इतिहास के इन पन्नों मे नित्य कर्म-पद्धति, संतो की वाणी और गायनवादन-नृत्य के साथ कीर्त्तन, नाटक, कथा इत्यादि के समारोह और व्रत उत्सव इत्यादि के सगठन की ओर ध्यान दिलाते हैं। विश्वामित्र निष्काम कर्मी हुए। उन पर भी भक्ति असर किये बिना नहीं रहती। वे अन्त मे विदा होते समय मनही-मन मे मुस्कुरा रहे हैं, क्योंकि वे त्रिकालदर्शी हैं और उन्हें

---

* तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे, अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति।
बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१०

स्पष्ट दीख रहा है कि काम बन गया। यों विश्वामित्र जी कुछ निर्मम हैं—साधुता की रक्षा, दुष्कृति का नाश और धर्म स्थापन छोड़ और कुछ न देखनेवाले न सुननेवाले। इन्हें नारद जी का शाप दीख रहा है जो अत्यन्त हितकर होने वाला है। देख कर प्रसन्न हो रहे हैं कि भगवान द्वारा शाप के अंगीकार कर लेने के अनुसार तीनों बातों का सूत्रपात हो गया है। 'राम रूप भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु'। रामने नर देह धारण कर ली है। जिस प्रकार राजा के मन में अपने वचनों के प्रति दृढ़ भक्ति और ऋषि के प्रति अपार श्रद्धा है उसके फलस्वरूप रघुकुल रीति के अनुसार राम को बनवास मिलेगा। सीता भी आ गयी हैं। स्त्रीवियोग होकर रहेगा। और वन में वानरों से सहायता भी मिल ही जायगी। यों धर्म के इतिहास की बड़ी से बड़ी घटना होकर रहेगी, और हुई भी। यह तो रामायण की कथा है। गायत्री मंत्र और उसकी कथा का वहीं अन्त नहीं। कविकुल ने उसकी रक्षा की और धर्म के प्राणों को तुलसी के हाथ तक सौंप दिया। यह धार्मिक इतिहास की कम महत्त्व की घटना नहीं है। कविकुल ने दिव्य दृष्टि और भक्ति के पाद-सेवन द्वारा नये रूप और नये भाव पैदा किये हैं। नाना पुराण और शास्त्रों की सृष्टि हुई। विशुद्ध ज्ञान और प्रकृति की आदि शक्ति के विवाह का वर्णन अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। पाद-सेवन की अमगति विवक के साथ होती है। अयोध्याकांड में स्पष्ट चेतावनी है कि सरस्वती जी देवी हैं, इसीलिए वे सुधी हों सो नहीं। विद्या से जितना हित होता है उतना ही अहित भी हो सकता है। यह तो प्रतिदिन का ... है। इसलिए भक्त को रामादर्श के पैरों का सेवन करना ..., क्योंकि कुछ तो कविमन का उच्छ्वास और कुछ मन-दर्पण को सुधारने के बाद शुद्ध विवेक यही बताता है कि रघुवर

का विमल यश चारों फल का देने वाला है। हम तो यह भी जानते हैं कि राम के बाद कृष्ण हुए। कृष्ण के बाद बुद्ध हुए। बुद्ध के बाद गुरुपद बढ़ते ही जा रहे हैं। भारत का गुरु पद इसीसे बना हुआ है। आज पद की कमी नहीं है। सेवन की कमी हो सकती है। फिर भी भक्तों की कमी भी नहीं है:—

राम लखन सिय सुन्दरताई,।
सब चितवहिं चित मन मति लाई।

इस छवि की अर्चना भक्ति की पाँचवीं धारा है। परम अर्चना की विशेषता यह है कि जो जितना और जितने प्रकार से छवि को निहारता है वह उतना ही उसी के अनुसार होता जाता है। कवि ने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है।

"सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।"

छवि देखने की रीति है यह .—

"काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया।
तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।"

सबसे सुन्दर पूजा भरत करते है, जो दूर रह कर राम को हृदय में धारण किये हुए है, जिनके विषय में सीताजी स्वप्न देखती है कि भरत आ रहे हैं और प्रभु-वियोग से उनका शरीर संतप्त है; जिनके प्रेम की गहराई के सामने लक्ष्मण तक को लज्जित होना पड़ा। जो समूचे धर्मों की धुरी को धारण करता है वही सच्चा पुजारी है, रूप-द्रष्टा है, आनन्द भोक्ता है। वही भरत है।

—

इसीलिए भरत जी के प्रेम से देवता घबराये, कारण उन्हें राम को रावण से भिड़ाना था। उन्हें राम और भरत के प्रेमसे क्या मतलब ? कहीं प्रेमवश राम भरत की बातों में न आ जाये। देवताओं की घबराहट तभी मिटी जब उनके गुरु बृहस्पति जी ने उन्हें समझाया कि महापुरुषों का प्रेम कर्त्तव्य का साधक होता है, न कि बाधक। इसीलिए जो राम किसी के डिगाये नहीं डिगते व बेधड़क कह देते हैं कि भरत जो कहें सो मुझे स्वीकार है। वज्रपाती देवताओं पर यह वज्रपात हुआ।

लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा।
अब सुरकाज भरत के हाथा।

देवताओं को भक्त भरत के सामने सिर झुकाना पड़ता है। भरत भक्त बनना पड़ता है। आज की दुनिया कोई दूसरी नहीं है। आजतक का यही हाल है। भरत जो सात्विक स्वार्थ को छोड़कर परमार्थ को मानते हैं। यह सोच कर देवताओं ने सास ली। फिर नयी समस्या था खड़ी हुई। जनक जी आ पहुंचे। अब तो प्रेम, बुद्धि और उच पद की प्रार्थना का प्रभाव राम पर पड़ रहा है। दशरथजी तो व्याकुल हो गये थे। इसलिए उनको समझा बुझा देना राम के लिए सहज था, परन्तु 'मोह मगन मति नहिं विदेह की'। इतनी बड़ी दुविधा राम के सामने अबतक नहीं आई थी। राम ने शरण ली गुरु वशिष्ठ की गुरु

और राम परस्पर सद्भाव से सत्य निर्णय पर पहुँचे।

यहाँ प्रश्न उठता है कि सभी तो वशिष्ठ, जनक, भरत और राम नहीं हैं। संसार तो 'कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसकी' लोगों से भरा हुआ है। उत्तर यह है कि वे यदि राम की शरण में आते हैं तब एक बार प्रणाम करने पर ही उन्हें राम अपना लेते हैं। यह सच्ची प्रार्थना का चमत्कार है। हम यदि विमुख रहते हैं तब एक समय ऐसा आता है जब रामबाण नतमस्तक करा कर छोड़ता है।

कार्य हो जाने के बाद हाथ मलने से कोई लाभ नहीं, और मदांध होकर ईश्वरको भूलने में भी मंगल नहीं। दोनों ही अवस्थाओं में ईश्वर की प्रभुता स्वीकार करके समता प्राप्त करनी चाहिए। भरत जगत हितके लिए समता के प्रतीक राम की पादुका को अमर बना गये हैं। राज्याभिषेक और वनवास में प्रसन्नता की बराबरी में समता का पूर्ण रूप है। वह तो एक दृष्टांत मात्र है। फिर भी भरत पूजित पादुकाओं की अदृष्ट शक्ति और समता अतुलनीय है। और भरत घर बैठे तपस्या करके जगत के लिए वंदनीय गुरु हैं। सत्य है, उन्होंने सिर झुकाकर मनुष्य जाति मात्र का सिर ऊंचा किया और सीता-राम की कहानी में मानवी जान डाल दी।

मुनिगण निरे मौन नहीं हैं। उन्हें वन्दना का प्रभाव मालूम है, यह अरण्यकांडमें बताया गया है। केवल मुनि ही क्यों? जिसने समस्त जीवन भोगी रहकर, रोगी बन कर (पर अन्त में सँभल कर) सीता राम की वन्दना करने के कारण मारा जाकर, अन्तमें उसी वन्दना के कारण हरिरूप पा लिया वह गीध भी असंख्य नरगीधों के लिए आशा-जनक

५

संसार संघर्ष का अखाड़ा है। एक दूसरे को दबाता है। और नहीं तो भाग्य हमें दबाता है या हम भाग्य को दबाते हैं। प्रेम के परिवार में भी अलग अलग झुकाव उपजते रहते हैं। सभी को कुछ न कुछ दबना पड़ता है—जैसा अवसर हो वैसा देखकर। अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए हमें शक्ति के स्रोत के सामने सिर झुका कर साधनाशील होना पड़ता है। इन्हीं सब कारणों से वन्दना का (जो भक्ति का छठवां प्रकार है) संसार में बड़े महत्व का स्थान है। वन्दना के दो प्रधान रूप हैं। कार्य के पहले प्रार्थना या मंगलाचरण और कार्य के बाद शांति वचन, जिनसे समता की उत्पत्ति होती है। इन सब का आधार यही है कि हम अपने भले-बुरे कर्मों के जिम्मेदार हैं। यह न होता और यदि सब काम अपने आपही होते जब तो धर्म साधन के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता और हम केवल भले बुरे फल भोगने वाले यंत्र हो जाते। सत्य यह है कि कुछ हद तक हम स्वतंत्र हैं। उतनी ही स्वतंत्रता को हम पूरे तौर से काम में लावें तो आकाश पाताल को एक कर दे सकते हैं। हम चाहें तो बुरे रूप से भी ऐसा कर सकते हैं, जैसा रावण ने कर दिखाया, या भले रूप से कर सकते हैं, जैसे भरत ने कैकेयी द्वारा रसातल में पहुंचाई गई स्थिति को ऐसा सुधारा कि लखन राम सिय से भी 'सब विधि भरत सराहन जोगू' हो गये। निष्काम ... भरत को यह जनता की वन्दना है।

साधारणतः प्रार्थी स्वार्थी होता है। मैं मांगता हूँ कि मैं जीतूं, सामनेवाले हारें। वे मांगते हैं कि मैं हारूं और वे जीतें। व्यक्तियों, जातियों और देशों का यही हाल सर्वत्र प्रार्थना-गृहों में है। राम मुस्कराते हैं, क्योंकि वे भी अनादिकाल से वन्दना करते आ रहे हैं अपने ही नियमके सामने। भगवान नियम-भंग या तो कर नहीं सकता या करेगा नहीं। यों भगवान अपने ही नियमको दो बार प्रणाम करता है। निचोड़ यही है कि भगवान से पक्षपात की आशा नहीं। कृपा की आशा सदैव है, कारण कृपा का दिखाना नियम के अन्तर्गत है। इसलिए जो अपनी आत्मा के बल को परमबल के अनुसार और अनुकूल करने की प्रार्थना करता है वह सच्चे रास्ते पर है। उसकी प्रार्थना कभी निरर्थक नहीं होती। उसके वचनों में और कामों में कहीं दुर्गन्ध नहीं। इस पुण्य गंधा पृथ्वी पर वह सर्व सुमनों का गाधी है। इन महापुरुषों का रहन-सहन बड़ा विचित्र है। वन में भी राम का रहना देखिए। सुन्दर कर्मों का घटाटोप, मानो पाकर का वृक्ष हो। फलों के रंगों की चटक का पता नहीं, जामुन जैसे श्याम। अन्त में आम जैसे रसाल फल भी मिले, परन्तु उनके लोभ में कर्त्तव्य का अन्त नहीं होता। काम निरन्तर जारी है—तमाल जैसे सुन्दर, सदावहार। इतना ही क्यों ? इन सब के बीच में है अश्वत्थ, जिसे वेद कहिए या मूल कारण। धर्म के सामने और धर्म के शास्त्रों के सामने सुजान सीता राम भी नतमस्तक हैं। यह वन्दना का आदर्श है।

एक दूसरे के गुणों को पहचानना ही असली प्रेम है। प्रेम वास्तव में अटूट प्रार्थना है। उसके बल की सीमा नहीं है।

उपदेश स्थापित करता है। परन्तु वन्दना के बल का सबसे बड़ा और भयंकर प्रमाण तथा उसका चमत्कार तब दृष्टिगोचर होता है जब रावण ने सीता को हरण करते समय सीता के चरणों की वन्दना करके मन मे सुख माना। विज्ञान की भक्ति को हृदय में रखकर प्रतापी जीव बहुत कुछ कर गुजर सकता है। आदि शक्ति उसके अनुकूल हो जाती तब तो उसकी हार महा से महा अचिन्त्य प्रलय बिना नहीं हो सकती। विज्ञान शक्ति को ध्यान मे रखकर विशुद्ध प्रकृति के प्रतिकूल और परमेश्वर की सत्ता के विरुद्ध प्रतापी मनुष्य या देश बहुत दूर तक बढ़ जा सकता है। उसकी हार तभी होती है जब वह विचलित हो जाय। और वह इस प्रकार हो कि *विज्ञान का ध्यान छूट जाय, हृदय का अंधा* हो जाय और उसकी चिर उत्पादन शक्ति अर्थात नाभिकुंड का अमृत मानवीय विरोध से शुष्क पड जाय। भावार्थ यह है कि राम और सीता दोनों के चरणों के विरुद्ध दुष्ट की चाल सदा के लिए नहीं चलती। सीता के चरणों के ध्यान से विज्ञान को हृदयंगम करके संसार के लिए वह भार तक हो सकता है, परन्तु राम के चरणों से विमुख होने के कारण अन्त मे इसी संसार की शक्तियों द्वारा नाश को प्राप्त होता है। इसीलिए भक्त सीता राम के युगल चरणों की पूजा करते हैं। जो ज्ञान विज्ञान की पूर्ण महाछवि को देखे और उनके युगल चरणों मे, अर्थात कार्यों में विनय के साथ दत्तचित हो वही धन्य है। जयन्त, शूर्पणखा इत्यादि ने इस रहस्य को नहीं जाना। अत उनकी दुर्गति हुई। भेद भक्ति वाले भक्त सीता और राम में भेद नहीं उपस्थित करते। वे तो केवल एक

कोने मे बैठने वाले हैं। इसलिए किसी का कोप उनपर नहीं पड़ता। फिर कई भक्त ऐसे है जो सेवा करने की इच्छा रखते हुए भी किसी कारण से लाचार है। इनकी बात और है, जैसे सुग्रीव मंडली। उनके कर्म की प्रगति के बन्द होने पर भी हार्दिक श्रद्धा और असली योग्यता देख कर सीताजी लाचारी की अवस्था मे अपहृत होकर जाती जाती भी सेवक पद का सम्मान देती गई। यों एक लाचार दूसरे लाचार का सम्मान करता है। जैसे भारतवर्ष की लाचारी के दिनों मे विज्ञान का वस्त्र आ गिरा था और उसकी पूजा होती रही। आज उसीका फल है कि केवल विज्ञान की डिगरियाँ ही नहीं है, वरंच जोरसे काम प्रारम्भ हुआ है। यह श्रद्धालु हृदय का भीतरी बल है। समय पाकर इसी से भगवान् रामचन्द्र मुग्ध होते हैं और आत्म-बल तथा परमात्मबल एक दूसरे के सहायक होते हैं। यही है भक्ति के छठे प्रकार की अर्थात् वन्दना की महिमा। यह निरी हाथ-जोड़ी या पावलागी नहीं है, परन्तु विद्युत से भी बड़ी शक्ति है। न भय से, न प्रीति से उसे कोई डिगा सकता है। इससे सच्चे सेवक तैयार होते है। यह भक्ति का सातवा रूप है।

सेवा है सातवीं भक्ति। राम पहले स्वय सेवा धर्म परायण होते हैं, फिर कहीं औरों से सेवा का दावा करते—वह भी बड़ी समझदारी के साथ। आज तो सेवा सबकी प्रश्न अन्य युगों की अपेक्षा अत्यन्त ही महत्व के हैं। सेवा की घटी जब बनती है तब सेवक की पहचान होती है और मालिक की भी। इन्हीं की क्यों ? सबके भेद खुल जाते हैं। सेवा का असर सर्वत्र फैलता है और सारे समाज के बर्ताव से सेवा का रूप बनता है। हम अपरिचित मनुष्यों की सेवा पर अपना तनमन धन सौंप देते हैं। और प्रत्येक मनुष्य दूसरों का रुख देखकर काम करता है। यह जगत व्यवहार है। इस तरह हर कुटुम्ब में, हर समाज में और हर युग में सेवा की एक रूप रेखा बन जाती है। इसका मूल्यांकन उसी प्रकार होता है जैसे अलग अलग देशों मे बीमा के लिए आयु की औसत का। मैं बड़े व्यापारों का उदाहरण इसलिए दे रहा हू कि रामकथा में भी बडे पैमाने की सेवा का विवरण है।

अयोग्य प्रभु के सेवक को अन्त मे विष मिलता है और अयोग्य सेवक के प्रभु को मिलता है बन्धन। रामने अच्छे सेवकों के बल पर दस प्रकार के बंधन कर लिए।

जोंधेउ बन निधि नीर निधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कम्पति, उदधि पयोधि नदीस॥

रावण के सेवकों की करनी से रावण के लिए वे ही दस प्रकार

बंधन हो गये। बुरे स्वामी और बुरे सेवक की जोडी अन्याय के मस्तिष्क से निकलती है, बहुतो को मारकर आपम्भरती है। अच्छे स्वामी और अच्छे सेवकका योग अपना तो भला करता ही है, साथ ही साथ परोपकार का रूप धारण कर लेता है। इसके उज्ज्वल भविष्य की थाह कौन लगा सकता है? कहने को तो सेवक वेतन के लिए काम करता है, पर वास्तव मे वह प्रभु का प्रभु बन जाता है। उधर प्रभु सेवक का सेवक बन जाता है। सेवक को अपनी चिन्ता नहीं, स्वामी को उसकी चिन्ता है। सेवक तो सेवा के जादू मे विभोर अपने आप को देखता ही नहीं। सेवक फिर कई कोटि के होते हैं। उन सब का अद्भुत वर्णन रामायण मे आ गया है।

रामायण अपनी विशिष्टता के अनुसार प्रसंग का आरम्भ सेवा के विलक्षण रूप से करती है। "जेहि विधि कपट कुरंग संग, धाई चले श्रीराम"। श्री राम को यदि पूछा जाय कि अपने मानव जीवन मे सबसे बडी कौन-सी सेवा की तो वे इसी को कहेंगे। इससे कहीं बडे काम उन्होंने अनेक किये, परन्तु यही निरी सीधी अबला सेवा है। स्त्री के हृदय को स्त्री ही जाने या जानें राम। वह बडे कामों को तो पुरुष के लिए स्वाभाविक समझती है। उनसे उतनी नहीं रीझती जितनी कि जब उसकी स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति के लिए पति दौड पडता है। स्त्री हृदय-समुद्र की तरंगो मे क्या-क्या उच्छ्वास होते हैं वह स्त्री को चेरी समझने वाला नहीं जान सकता। स्त्री प्रकृति है परम पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी—मानव जाति की भी आधी मूर्ति। घर में वह है गृहिणी और पति हैं पाहुन। बाहर स्त्री होती है अतिथि और

पति होता है रक्षक। वह तो केवल बाहरी रूप है। राम दौड़कर केवल अतिथि सेवा कर रहे थे या अपनी लीला की सेवा यह तो राम जानते हैं या सीता। 'सो छवि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम'। सोचने की बात है कि परमात्मा का पहला काम क्या था। पुरुष प्रकृति का जोड़ा बैठाना। इनका परस्पर आनन्द ही पहला आनन्द—परम आनन्द सच्चिदानन्द है। यह जग पावन है, कारण ऐसे प्रेम को पाकर जगत में रहते हुए प्राणी शुद्ध हो जाते हैं। यही विरह की हालत में भी भीतरी आनन्द है। इसका पता काम को भस्म करने वाले शिव को लगा, परन्तु सती चूक गईं।

साहित्य-सेवा स्वयं बड़े से बड़े महत्व की सेवा है। परन्तु तुलसीदास जी ने जो अट्ठारह प्रकार की सेवाओं को सेवक रूप से और तीन प्रकार की बाधाओं को शत्रुरूप से इंगित किया है और जिनका यहां उल्लेख किया गया है वे केवल दृष्टान्त मात्र हैं। व्यावहारिक जगत के हर क्षेत्रमें यह लागू हो सकता है। साहित्यके अट्ठारह अनुचर हैं और तीन शत्रु। जो उन अट्ठारह अनुचरों से नखशिख वर्णन करके वासना को उभाड़ता है वह तो निम्नकोटि की सेवा करवाता है। उनकी असली सेवा है कि वे विशुद्ध प्रकृति की उच्चतम शोभा की अभिव्यंजना में सहायता करते रहें और अपनी लघुता को न स्वयं भूलें न दूसरों को भूलने दें। परन्तु (मा जब दूर पड़ गई और कर्त्ता व्याकुल हो गये—जैसे सीता कैद हो गईं और राम अपने आप को भूल-से गये, मानों प्रकृति के असली सौन्दर्य्य का दर्शन ओझल हो गया और वेद को किसी ने कुछ न समझा—उस समय

अट्ठारहो नौकरों ने अपना कमीनापन दिखा दिया। स्वामिनी और स्वामी को भूल गये और अपनी प्रभुता जमाकर अपनी प्रशंसा कराने लग गये। (१) खंजन की ड्यूटी थी कि जगज्जननी के पवित्र रूप को देखे और दूसरों को दिखावे। अब दीखता तो कुछ है नहीं, परन्तु कहलवाता है, 'वाह! वाह! देखो कवि की अनोखी सूझ है'। (२) फिर देखिये तोते की करतूत। उसका बूता इतना ही था कि सुन्दर पदों को रटे और शिष्य रूप से सुनावे। आज वही रटती वेदांती कहलाता है, विद्वान् और गुरु बन बैठा है। (३) तीसरा सेवक है कबूतर। उसको तो यही काम था कि नित्य आकर चरणों के पास कुछ स्तुतियां कह दे और अपने दाने चुग ले जाय। अब वह करुणा का पात्र पुजारी बड़ा कर्मकाण्डी बन गया है। कहता है, मेरे ऊपर कोई है ही नहीं। (४) हरिण मौत के भय से अमृतत्व प्राप्ति के लिए आते थे। आज वे वेद से ऐसे भागते हैं, मानो वेद काल हो और उनका स्वार्थी परिवार माया ग्रस्त होते हुए वेद की निन्दा तक करता है और कहता है कि वेद तो काम्य कर्म के कंचनमृग की खोज में हैं। (५) पुन मछली भी वाचाल हुई। उसका काम था उत्तम रत्नों के समुद्र से परिचय कराना। आज साहित्य में मात्स्य न्याय चल रहा है, दुनिया तमाशा देख रही है और उसी की प्रशंसा कर रही है। (६) भौंरों के समूह को श्रेय था कि सदा मधुपान करके पद कमलों की शोभा बढ़ावें। आज काले भौंरो का और ही कृत्यों के लिए गुणगान होता है (७) प्रवीणा कोकिला भजन गाती थी। आज उस रात्रि की गायिका के भजन विषयासक्त समान गा-

रहा है। (८) कुंदकली नित्य देव और मनुष्य के यश बढ़ानेमे लगी हुई थी। कहती थी, 'इम पुहुप विहारे अहै'। आज का साहित्य ठीक इसके विपरीत होने मे नाच करता है। (६) नवा सेवक है दाड़िम। मैं अनारकली तक तो बात को नहीं ले जाऊंगा, परन्तु देखिये अनार की बात। उसका कर्त्तव्य था अच्छे गुणों के समूह को खोलना। इस समय तुच्छ अलकारों की भरमार है और वही साहित्य की अनार है। (१०) दसवां सेवक है विद्युत। उसका कर्त्तव्य है कि वह पुकार कर कहे "द द द इति दाम्यत दत्त दयध्व इति"। अर्थात् फूल शब्दों मे कहे कि इन्द्रिय दमन करो, मनुष्योंको कहे दान करो और दानवों को कहे, दया करो। आज बिजली केवल चकाचौंध करानेवाली रही है। ऊपरी चमक दमक। (११) ग्यारहवां सेवक है कमल। इसको करना तो चाहिये था यह कि तीनों कालों की व्यवस्था को दिखाता, साहित्य का सिर ऊँचा करता, अच्छे कामों का प्रचार करता और उन्हें सफल कराता और समाज में साम्यभाव स्थापित करता। वही होती कमल नयन, कमल मुख, कमल कर और कमल-पद की सेवा। आज अपने शतदल नाम को सार्थक करके इसने सौ प्रकार की दलबदी और तमाशे खोल रखे है और यह कहता है कि बस। यही जीवन है। (१२) बारहवां सेवक है शरचन्द्र। उसका काम है हृदय को आलोकित करना। आज का शरचन्द्र किसी और ही क्षेत्रों पर झांक रहा है। (१३) तेरहवीं है नौकरानी नागिनी। उसका काम है कि दुर्मुखी तक होकर स्वय वैराग्य भाव से सत्साहित्य के चन्दन तरु के पास बुरे मनुष्यों और भावों को न आने दे, पर आज वह स्वतन्त्र है। (१४) चौदहवां सेवक है वरुण का पाश। इस बिना

साहित्य छंद रहित, उच्छृङ्खल हो जाता है। वारुणी आज साहित्य के गले की फांसी है। शराब की महिमा गाकर साहित्य खराब हो रहा है।(१५) पन्द्रहवां सेवक है कामदेव का धनुष, न कि कामदेव। सत्साहित्य में वह धनुष शृङ्गार के रूपकों के बाण छोड़ता है। आज वे बाण रूपक-मात्र नहीं रहे। वे दुनिया को अपने वश में किये हुए हैं। अच्छे साहित्य को मार भगाने की चेष्टा में हैं। (१६) सोलहवां सेवक है हंस। उसका कर्त्तव्य है कि वह गंभीरवेदी समालोचक हो और नीरक्षीर का विचार करे। आज वह बड़े ऊपर उड़ रहा है। सभी की हंसी करने में अपना हंसत्व मानता है। (१७) सत्रहवां सेवक है गज। उसको चाहिए था कि सुन्दर भावों के लिए मदयुक्त हो श्रद्धा पैदा कराता। वह तो मदाध होकर शास्त्रों तक को पैर तले कुचल रहा है। (१८) अट्ठारहवां सेवक है सिंह। उसको होना चाहिए वेदांत केशरी, क्योंकि वही अन्तिम सेवक है। परन्तु उसने तो हिंसा के प्रचार को परमधर्म मान रखा है और अपने पंजे को परमपरम शक्ति। आज सीता विरहिणी है। राम विरही है। तब सारा जगत तो विरही हो गया, कारण साहित्य सबा सेवक है। अब शत्रुओं की बन आई है। श्रीफल का मोल, कनक का व्यापार और कदली की चलन बढ़ गयी है। पहले तो भद्दा साहित्य समाज से छिपा रहता था था संकोच के साथ सामने आता था। आज श्रीफल दिखाता हुआ, गिन्निया उछालता हुआ, जांघ उघाड़ता हुआ निधड़क और हर्षित होता हुआ राज्य-केन्द्र में विराजता है। इस अवस्था को 'सीय-राम-मति' उलटेगी। वह बड़ी से बड़ी सेवा होगी।

राम को चन्द्र कहते हैं, क्यों ? चन्द्र को राम कहते हैं क्या ? ये बड़े रस के प्रश्न हैं। पहले प्रश्न में श्रद्धा समाधान चाहती है और दूसरे में समाधान चाहती है शंका, क्योंकि राम सबकी दृष्टि में मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं और चन्द्र सदा से कलंकित। तब इन दोनों का सख्य कैसा ? पूरी भक्त-मंडली बिना इसका समाधान नहीं हो सकता। जितने मुँह उतनी बात। फिर भी हनुमान ने सिद्ध कर दिया कि राम चन्द्र हैं और विभीषण के बतानेसे यह रहस्य खुल गया कि चन्द्र राम है। चन्द्र से बढ़ कर सूर्य का सेवक और सखा कोई नहीं हो सकता, क्योंकि चन्द्र सूर्य की ऐश्वर्यमयी रश्मियों को धारण करके जगत को अमृत और आलोक प्रदान करता है। इसलिए सूर्यवंशी राम का भी यदि चन्द्र सेवक और सखा है तो क्या आश्चर्य है ? केवल चन्द्र ही क्यों ? जितने दास हैं वे सखा हैं। जो कोई सखा है वे राम ही हैं, कारण दासों को और सखाओं को अपने समान पद रामने दिया है। इस समानता को स्थापित करने के लिए राम को मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ा। जब मनु और शतरूपा ने परमेश्वर से वर मागा कि तुम्हारे समान हमें पुत्र हो तब परमेश्वर ने कहा था कि "अपने समान मैं कहां से लाऊँ, मैं स्वयं पुत्र रूप से जन्म ले लूगा। स्वयंभूके लिए मैं स्वयंभू बनूँगा"। सत्य एक ही है—उसे परब्रह्म रूप से देखिये या नररूप से। सत्य दो कहां मिले ? एक ही को अनेक रूप से पा लीजिये। इसीलिए नाना

भक्तों मे एक राम हैं। जितने सच्चे भक्त हैं व सब राम को प्रतिबिम्बित करते हैं। किसी के सौंदर्य को राम नष्ट नहीं होने देते। अपने पास रखे रहते हैं। इस प्रकार सभी भक्तों को एक बना लिया जाता है। इस एकता का नाम है राम। आजकल तो बहुतेरे मनुष्य राम बन बैठते हैं। निज को भगवान की पद-वियों से विभूषित कर लेते है और अपने अनुचरों द्वारा उसी प्रकार पूजा अदा करवाते हैं। कोई कोई तो झूठी नम्रता धारण करते हुए कहने को यह भी कहते हैं कि हम किस लायक हैं? हम तो दासों के दास हैं। परन्तु यह सब ऊपरी बातें हैं। वास्तव मे यह भारत का दुर्भाग्य है।

भक्ति के शेष तीन रूप सेवा, समानता और एकता, जिसे दास्यं, सख्य और आत्मनिवेदनम् कहते हैं वे रामायण में हर दृष्टिकोण से वर्णित हैं। कथाएँ बड़ी गूढ़ तथापि सरस हैं। मैं केवल दो एक पदों किंवा दृष्टांतों की ओर ही ध्यान आकर्षित कर सकता हू। सेवा के विषय मे मै एक पूर्व लेख में लिख चुका हू।

भौतिक दृष्टि से चन्द्रमा के रहस्य का पता आज जितना मिल गया है उतना—राम के कहने से ही समझ मे आता है—राम को भी नहीं था। काव्यरस और ज्ञानशिक्षा की दृष्टि से आज भी सूर्य उगता है, आकाश मे चलता है और अस्त होता है। चन्द्र घटता है, बढ़ता है, रोता है, रुलाता है और नाना रूप दिखाता है। चन्द्र के मध्य श्यामलता है। उसे सारा जगत कलंक कहता है। उस कलंक के अन्याय आरोपण को मिटाने के लिए राम भक्तो मे चर्चा करते है। यहा राम स्वयं विरहियों

, यों राम का समाज बढ़ता जाता है। चन्द्रमा की किरणों से या चन्द्रवत् विद्या के स्वच्छ शीतल स्पर्श से नई चेतना उत्पन्न होती है। अन्त में सुकीर्ति द्वारा कल्याण होता है।

दानव को महाबली कहते हैं। उनसे अधिक बली भक्त हैं। भक्त के पद भगवान के पद के समान, यहां तक कि एक होकर, चलते हैं। संत की वह रचना भगवान की वेद रचना के अनुकूल होती है। जो वेद को नहीं हटा सकता वह सन्त के पदको भी नहीं हटा सकता। इस सत्य को अंगद खूब जानता था और रावण की सभा में प्रमाणित कर दिखाया।

(रावण के दस मुख क्या हैं? तुलसी दासजी कहते हैं कि मुख सम्पति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई।
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।)

प्रचलित तस्वीरों के अनुसार दस सिर वाला जीव देखने में नहीं आता। इसलिए हम समझ बैठे हैं कि रावण सदा के लिए मर चुका। परन्तु याद रहे कि रावण की भुजाओं और सिरों को मन्दोदरी के सामने रख दिया गया था। अब जिसों की किस्मत मन्दोदरी है उसी के पुरुषार्थ के दुरुपयोग से व के वे कर्म और वे के वे सिर प्रकट हो जाते हैं। उनके लिए राम का तरकस भी ज्यों का त्यों बना हुआ है।

राम शक्ति भी जब देने लगते हैं तो ऐसी देते हैं कि अचंभेका ठिकाना नहीं। वह स्वयं जब उपदेश देते हैं तब बड़े विनीत भाव से।

कहउं न कछु ममता उर आनी।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सुहाई।

यह असली एकता की बात है। परन्तु भक्त का दूसरा ही रंग और प्रभाव है। वहां भी एकता है। सब वही की वही बातें हैं। राम तो शांत हैं और ज्ञान की बातें सरल रूप से कहते हैं परन्तु भक्तों में अनुपम उत्साह और रस है। इसलिए काकभुशुण्डी जी के आश्रम में पहुंचते ही गरुड की तीक्ष्ण दृष्टि ने जो कुछ देखा उसीसे बिना एक भी शब्द सुने समूची शंका मिट गयी। भगवान क्यों भक्तों की सहायता मांगते हैं इसका रहस्य वहां के आदर्श सहयोग और वातावरण को देखते ही खुल गया। भगवान के वाहन नित्य के साथी दार्शनिक गरुड़को शंका मिटाने के लिए नीची जाति के भक्त के पास जाना पड़ा। शंका मिटी सो तो मिटी ही। अपिच वहीं उन्हें दिल खोलकर पीने को अमृत मिला। प्रभु के अति सान्निध्य में संकोच और शंका हो भी सकती है जैसे दीये के नीचे अंधेरा, जैसे पंडितों के मन में भ्रम। परन्तु कौआ भगत तो किसी की गिनता सुनता नहीं। अतः भुशुण्डी से धड़ल्ले से बाजी मार ले जाता है।

—:०0:—

की ओर से चन्द्र पर वही आक्षेप करते हैं, जिसमें कि हनुमान जोश में आकर चन्द्र को कलङ्कमुक्त कर दें। हुआ भी वैसा ही। यह तो सब जानते हैं कि हनुमान के हृदय में राम बसते हैं। हनुमान का शुद्ध हृदय सभी भक्तों को अपनासा दीखता और समझता है। हनुमान ने बाहर बैठे नर रूप राम तक की बात को भीतर बैठे अनिर्वचनीय राम के इशारे पर काट दिया और जोर से कहा, "चन्द्र विष का भाई हुआ तो क्या हुआ? चन्द्र मेरा भाई है, मेरा गुरुभाई है।"

यह हनुमत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति विधु उर बसति, सोई स्यामता अभास॥

हनुमान के इन वचनों से राम का महत्त्व बढ़ता है, हनुमान का महत्त्व बढ़ता है, चन्द्र का महत्त्व बढ़ता है, सच्चे सेवक का महत्व बढ़ता है और सख्य भाव का अनुपम सुन्दर रूप सामने आता है। ये वचन खुशामद के वचन नहीं ये तो फटकार के वचन हैं। एक दास अपने भाई चन्द्र के साथ समानता और एकता स्थापित करते हुए बड़े प्रेम अथच स्पष्टता के वाक्य द्वारा परम प्रिय प्रभु को डांट बताता है

किये हुए हैं। विरह ही जीवनमात्र पर काला चिह्न है। उससे बचकर राम हमारे कैसे बनते ?

सूर्य से चन्द्र दबता है और चन्द्र से दबती है दक्षिण दिशा। पूर्व से उदित चन्द्र ध्रुवपद मे क्षीण होता है और दक्षिण की ओर अपना प्रभाव सबसे अधिक फेंकता है। और वह तेज वहां से लौटकर उत्तराभिमुख ऊपर की ओर शांत होता है। यों ही पूर्वी विद्या दक्षिणी कर्मक्षेत्र में शांत अदृष्ट रूप से बिना भूकम्प या आंधी या खुन खराबी किये अथच बिना क्रांति किये अपने स्थान में विश्राम लेती है। हनुमान ने चन्द्रमा की निर्मलता देखी। विभीषण ने देखी उसकी ज्योति में रावण की शक्ति। राम ने देखा उसका दूर तक का

वेद के सामने कोई ताले नहीं ठहरते। सभी सच्चे ग्रन्थ उसके सामने अपने अर्थ के खजाने खोल देते हैं। वेद की महिमा है कि वेद पर भी कोई ताला नहीं लगा हुआ है। सच्चे ग्रन्थों के सामने वह भी अपने सुन्दर रूप की झलक प्रकट कर देता है। परन्तु दो-चार ग्रंथ ऐसे भी हैं, जिनके विषय में कहा जा सकता है कि वेद राम के वे लक्ष्मण हैं। वेद मूल हैं और वे उनकी टीका। सामवेद और रामायण का ऐसा ही संबंध है। जब सामवेद की सहस्र शाखाएँ थीं तब तो इस रंगभूमि पर स्वर्ग से अधिक आनन्द रहा होगा। उसकी कीर्ति कहां तक फैली और फिर वह हजार शाखाओं का विशाल वृक्ष किस प्रकार से नष्टप्राय हुआ यह कहानी मैं आज नहीं कहूंगा। आज तो मुझे इतना ही कहना है कि जिस भगवान ने सामवेद जैसी अनुपम निधि को रचा उसीने उसको जड़ मूल से नष्ट नहीं होने दिया और उसकी याद बनाई रखने के लिए कह दिया कि वेदों में मैं सामवेद हूँ। इसलिए एक ओर तो सत्कगण उसकी रज की सेवा करते रहे और दूसरी ओर उसके अर्थ का अन्वेषण करते रहे। दक्षिण के विलक्षण संगीत, नृत्य और मूर्तियों में सामवेद की कुछ शाखाओं की कुछ डालियाँ और पुष्प बने रहे। उत्तर अधिक चोट खाया हुआ था। उसने संतों की वाणियों में सामवेद के कुछ बिखरे मोतियों को जैसे-तैसे धारण किये रखा। इस स्थिति में हिन्दी-भाषियों के सौभाग्य से तुलसीदास का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हें सामवेद के मर्मोपदेशक भी मिल गये। उन्होंने सोचा कि सामवेद के पद-पद में रहस्यमयी शोभाओं का अन्त नहीं है। अतः अर्थ की झलक-मात्र ——

दो कि समझने वाले उसके सहारे सामवेद के मूल का अनुसंधान पा जाय और जिन्हें उतना उद्यम स्वीकार नहीं है वे सामवेद को बिना याद किये भी लाभान्वित हो जाय। सामवेद रसों की खान है। ऋषियों का जहाँतक वश चला, सुगम भी है। फिर भी उतनी गूढ़ विद्या कहाँ-तक सरल हो सकती है? उसके शब्द अपरिचित हो गये, इसलिए आरम्भ में पाठ तक कठिन मालूम होता है। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद उसके पदों और शब्दों के मिठास की तुलना नहीं हो सकती। कम से कम इतनी बातो को ध्यान मे रखकर सामवेद और रामायण का तुलनात्मक अध्ययन कोई करे तो, यदि कमसे कम भी अधिकार प्राप्त किया हुआ वह हो तो कृतकृत्य हो जायगा। पाश्चात्य विद्या से प्रभावित श्रद्धाहीन व्यक्ति सतर्क न रहें तो चूकते जायेंगे। और जो रूढ़ि के बन्धनों में जकड़े हुए हैं वे भी पदपद पर अर्थों को छोड पीछे की ओर भागते रहेंगे, दिन को रात कहेंगे और रात को दिन। 'बणमहानसि सूर्य'। जो हो, महान है सूर्य। वेद के सूर्य के सामने अंधकार टिकता नहीं। तुलसीदास के चन्द्र के सामने चोरी चलती नहीं। सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्। सत्य है चन्द्र, सत्य है राम। सत्य है गुरुराज और सत्य है बुद्धिमान शिष्य। वेद के शब्द और देवता प्रसंग के अनुसार अर्थ रखते हैं। जैसे इन्द्र शब्द को ही लीजिए। उसका अर्थ कहीं गुरु महाराज है, तो कहीं देश का राजा, तो कहीं स्वर्ग का राजा, कहीं मन का राजा, कहीं परमेश्वर। इत्यादि इत्यादि। इसी कारण एक ही मंत्र के अनेक प्रकार के अर्थ हो सकते हैं, परन्तु जितना उत्तम अर्थ लिया जाय उतना ही अच्छा है।

आशय समझाने के लिए बहुधा मध्यम अर्थ अधिक उपयोगी रहता है। इसलिए तुलसी दासजी ने जानबूझ कर मध्यम अर्थ दिये और जहां तहां अपने समय के अनुकूल। आश्चर्य है उन दिनों की, गुरुओं की बात सुनकर। जो गुरु एक ओर तो इन्द्र है, उन्ही के मुह मे गधा कुत्ता, सुअर, सियार लगे ही रहते थ। 'खर स्वान सुअर सृगाल मुख।" शिष्यों को गाली देने के लिए नहीं, वरच अपने लिए। आर्त्त आते तो गुरु का मुख धर्य्य धारण कर लेता था। जिज्ञासु की शका को मानो भोंक कर भगा देते। अर्थार्थी को खोद खादकर घाट घाट कर अर्थ निकाल कर दे देते और ज्ञानी को चातुय से अनुसधान बता देते। वैसे ही गुरु शिव को वारात का निमत्रण पाते हैं। धन्य है उन दिनों की उपमा। समूचे पुराने नये सत्यशास्त्र का श्रद्धामय पठन है पार्वती जी का एक काम। वह है पर्वत से आयी और सीखी हुई दृढ बुद्धि। वेद ने स्वय कहा है "धिष्णा असि पार्वती"। उसका अधिष्ठात्री देवी के मन मे जो कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं उनका समाधान करता है शिव। उन दोनों का पुण योग है शिव का विवाह। उस बिना राम कथा कपोल कल्पित हो जाती। समूचे शास्त्रों पर श्रद्धा और विश्वास जमने से गणेश का जन्म होता है। बडी कथा के वह सुपात्र होने चाहिये। एक के बिना दूसरा कुछ नहीं। इसलिए वाक् और अर्थ का अभिन्न सबध है। कथा है विश्व की और उसके सुपात्र हैं परमेश्वर। उपमाओं को क्या आवश्यकता है? उनसे सत्य ढक जाता है। ठीक है, परन्तु सत्य इतना व्यापक और गूढ है कि वह शब्दों मे कहा ही नहीं जा सकता। उसकी ओर इशारा किया जा सकता है। रूपक से ही व्यापक का वर्णन होता है। उसमें अर्थ व गूढ के गुच्छ रहते हैं।

उसे तो सब चाव से पढते सुनते है और अपने-अपने अधिकार और आवश्यकता के अनुसार अर्थ निकाल लेते है। जिन पुस्तकों मे उपमाएँ कम है उनको विरले विद्वान ही पढते है। साधारण जनता को उनमे रस नहीं आता है।

रामायण के आरम्भमे मुख्यत बारह सनातन वर्णों का वर्णन है। यह है आरम्भिक वर्णपरिचय। रामायण का ककहरा। वे हैं (१) वाणी (२) विनायक (३) भवानी अर्थात् श्रद्धा (४) शकर' अर्थात्‌समाधान (५) गुरु अर्थात् परमबोध (६) चन्द्र अर्थात् शिष्य की तीव्र बुद्धि (७) कवीश्वर, जो असली में एक है, परन्तु समय समय पर नाना नाम धारण करता रहा है। गीता में कहा गया है—कवीनामुशना कवि । सामवेद में वही नाम आया है। फिर वाल्मीकि को कवीश्वर का पद मिला। (८) कपीश्वर, उनकी महिमा अपरम्पार है। वह परमभक्त है। उनके गुणों, रूपों और नामों का अन्त नहीं है। महाप्राण और दिव्य दृष्टि से उनका जन्म होता है। (९) सीता विशुद्ध प्रकृति है, जिसे आद्या शक्ति कहते हैं। (१०) राम, जो परम पुरुष है। (११) पुराने शास्त्र जो हमारी सबसे बडी निधि हैं। (१२) नयी विद्या, जो आजकी ज्योति की अनुपम देन है। जो अदृष्टपूर्व है। अर्थात् जो अदृष्ट भाग्य से भी अव्वल है, बडी है, पहले की देखी बातो से आगे बढी है, जिसके कारण नाम राम से बडा समझा जाता है, जो वास्तवमे राम की शुभ्र गोद से उठकर हमारे सामने आ खडी है। फिर वही अपूर्व दृश्य बन जाता है। आज का बच्चा कल का पुराना हो जायगा। फिर नये कवि होंगे। यों काव्य का उज्ज्वल रूप बना रहता है। पढने वालों के ऊपर बोझ नहीं चढता, सौभाग्य बढता जाता है।

—

जी हां। मैं दोषी हूं। मुझ पर पहला चार्ज यह लगाया गया है कि मैं *भारतीय विद्या, भारतीय मन्दिर, मूर्ति-कला,* भारतीय सभ्यता और तीर्थों का जोश से वर्णन करता हूं। क्या करूं ? इतनी सुन्दर निधि को देख कर जोश आ जाता है। दूसरा चार्ज और भी संगीन है। वह यह है कि मैंने अस्पष्ट शब्दों में अधिकारी की बात कही है। अधिकार का स्पष्टीकरण पहले क्यों न कर लिया जाय ? यह नहीं करता हूं तो पहले गाडी और पीछे घोड़े को जोतता हूं। एक शब्द में, जो माया और मृत्यु में फंसा रहना चाहता है, जिसे सत्य की खोज *नहीं करनी है वह अधिकारी नहीं है। तुलसीदासजी ने इन* चौदह मुर्दों की बात और परिचय इन थोडे से वाक्यों में सुन्दर रूप से दे दिया है।

कौल कामबस कृपिन विमूढा, अति दरिद्र अजसी अतिबूढा।
सदा रोगबस सतत क्रोधी। विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी।
तनु पोषक निन्दक, अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी।
(लंकाकांड)।

उन्हीं के विपरीत ये चौदह यम काम कर रहे हैं —

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वैनमः॥

ये दूर के ढोल नहीं हैं। उनके पारलौकिक शक्ति होते हुए जो उन्हें इसी जीवन में अपनी शक्ति बना लेता है वही सत्य-ज्ञान और सत्यधर्म का अधिकारी है। उनकी रट लगी रहनी चाहिए।

पहला मृतक-तुल्य है कोल, वाममार्गी। जो टेढ़ा चले वही वाममार्गी है। उस शब्द का संकीर्ण अर्थ क्यों लिया जाय? आज संसार ऐसे मनुष्यों से भरा हुआ है जिनको सत्य का नाम बिच्छू के डंक-सा लगता है। वे सबके सब वाममार्गी हैं। दुनिया में सच्चे रास्ते पर चलने वाले चाहे कम हों, परन्तु उनमें यम का बल है। वे अपने संयम के द्वारा मृत्यु की मार पर पहला वश जमाते हैं।

दूसरा मरा हुआ वह है जो काम के वश है। वह धर्म अधर्म कुछ नहीं देखता। उसे तो मतलब से मतलब है। वही सबसे अधिक धर्म की डींग हाकता है। इसलिए उसका पूरा फैसला धर्मराज करता है। अविचल बुद्धि धर्मराज की सहचरी है। निष्काम भाव स्वयं धर्मराज है, क्योंकि वही धर्मों का राजा है, परम धर्म है।

तीसरा मुर्दा है कंजूस। जिसका जो अधिकार है उसे जो नहीं देता है वही है कंजूस। गीता में उसे कहा है स्तेन अर्थात् चोर। आज चोर-बाजार की मृत्यु पुकार-पुकार कर पूछती है कि "कितने दिनों के लिए इतना अनर्थ कर रहे हो? किसके लिए पाप का धन संचित करते हो? क्या एक से चुराई हुई चीज में से कुछ दूसरे को देकर दानी कहला कर मृत्यु को भी ठग लोगे? कदापि नहीं। बिना मौत मरोगे और अपने स्वजनों और पिट्ठुओं को भी बिना मौत मारोगे, क्योंकि मैं

लोक में कह सकेगा कि मेरे परम पिता इतने धनी हैं तो मैंने सब कुछ पा लिया। परम पिता कहेंगे कि मेरा पुत्र ऐसा है तो मेरी सृष्टि में कमी ही किस बात की है ?

छठा गया-बीता वह अयशी है जो अपने को बदनाम करा लेता है। बदनामी के घाव को समय मिटाता है। छठे यम का नाम काल है। वह समय के प्रभाव को बताता है। दीर्घ काल तक धर्म की सेवा करने से बदनाम मनुष्य भी अच्छा कहलाने लगता है। 'कालः कलयतामहम्।' काल सबसे बड़ा हिसाबी है। एकादशों का प्रधान है। खोये हुए यश का पता लगा कर ही छोड़ता है।'

सातवाँ मुर्दा है अति बूढ़ा। आयु अधिक होने से ही मनुष्य अति बूढ़ा नहीं होता। हमने प्रायः सौ वर्ष या उससे भी अधिक उम्रवाले सत्पुरुषों को देखा है, जिनकी सौम्यता युवकों-सी रही है। अति बूढ़े वे हैं जो पुरानी माया में लिपटे रहें, जो भूत ही भूत देखते रहते हैं। उन्हें सर्वभूतक्षयी यम पूछता है, "तुम तो बच्चे नहीं हो, तुमने तो दुनिया बहुत देखी। किसी को सदा जीवित रहते देखा ? किसी को माया में फँस-कर सुख पाते देखा ? नहीं तो तुम झूठी हाय-हाय में, थोड़ा-सा मूल्यवान् समय जो तुम्हारे हाथ है, उसे क्यों खोते हो ? क्षय का इलाज अपने क्षय से नहीं होगा। शरीर का क्षय तो परमधाम रूप हो जाय यदि तुम यहाँ के प्राणियों के मोह का क्षय कर दो और नवजीवन का क्षयन्त बनो।"

आठवां निकम्मा वह है जो सदा रोगवश है। रोगी और रोगवश में अन्तर है। रोग को उपनिषदों ने बड़ी तपस्या कहा है। चतुर रोगी रोग को भी अपना हितू बना लेता है। जैसे

बुद्धिमान कैदी जेल में भी बड़ी साधना कर लेता है। रोग के दौरे के समय भगवान् का ध्यान करके चित्त-शुद्धि कर सकता है। वह ध्यान लगाने लायक अवस्था में न हो तो उसके बन्धुगण उसके निमित्त भगवान् के वचनामृत का सुललित पाठ करके उसके कानों में कुछ तो ध्वनि डाल ही सकते हैं। रोग वशीभूत रात-दिन रोग को सोचते रहता है और दूसरों को उसी की नीरस कथा सुना सुना कर तंग करते रहता है। उसका बहाना होता है कि शास्त्र जैसे जटिल विषय सुनने की मुझमें शक्ति कहा? उसका उत्तर है कि घड़े फैले हुए ससार उदुम्बर का मूल एक पद में है, 'भेषजमसि'। ज्ञानी की दवा वह स्वयं है। नाड़ी वश में हुई तो रोग वश मे है।

नवाँ अभागा है निरन्तर क्रोधी। वह क्रोध मे अपना भी हित करना भूल जाता है। ईश्वर की व्यवस्था से चिढ चिढ कर आवागमन मे खूब ही भटकता है। उसको तो अपने क्रोध की विशाल मृत्यु ज्वाला को, उस पर निरन्तर धर्मामृत की शीतल धारा डाल कर शान्त कर लेना पड़ेगा। बड़ी आग बुझाने की रीति ही अन्य कौन-सी है?

दसवाँ मुर्दा वह है जो विष्णु से विमुख हो। ईश्वर का वैभव बहुत फैला हुआ है और बड़ा गूढ है। भोगी भोगी मे टक्कर लगती रहती है और विष्णु सोया हुआ-सा दीखता है। भोगियों की शिकायत होती है कि हमने विष्णु भगवान् के इतने भोग चढाये, पर आज वे कहाँ छिपे बैठे हैं? ऐसे धर्म को समुद्र मे डुबा दो। विष्णु हृदय मे उत्तर देते हैं, "तुम स्वयं समुद्र में डूब जाओ—विद्या के समुद्र में, रस के समुद्र में, परोपकार के समुद्र में। आशा और निराशा छोड़कर क्षीर-समुद्र में जम जाओ। तब विष्णु और तुम एकरंग हो जाओगे।

विषाद का नीलापन देखने वाले तुम नील-सरोरुह, नील-मणि, नील-नीर-धर श्याम को केवल देखोगे ही नहीं, स्वयं वही बन जाओगे।"

ग्यारहवाँ अकमण्य है वह जो वेद और सन्तों का विरोधी है। आश्चर्य की बात यह है कि इनका इतना उलटा अर्थ बताया जाता है कि विरोधियों की संख्या नित्य बढ़ायी जाती है। परन्तु सामवेद कहता है :—

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥

मेरे शरीर में तेज और यश और यज्ञ का दुग्धामृत परम कर्त्तव्य-परायण और परम पिता इस प्रकार बढ़ावें जैसे आकाश मे रोशनी।

बारहवाँ निकृष्ट मनुष्य है वह जो अपने शरीर का गर्व करता है और उसका ही पोषण करते रहता है। उसको भयंकर भोग मिलते हैं, परन्तु वृक की क्षुधा के अनुसार खानेवाला हो तो कर्म का अजीर्ण नहीं होगा।

तेरहवाँ मुर्दा है पर-निन्दक। अन्त तक उसी की दुर्दशा होती है। उसी का नग्न चित्र सब के सामने आता है। वही यदि दूसरों की भलाई का चित्र खींचता रहे तो किसी समय उसका भी अच्छा ही चित्र सामने आवेगा।

चौदहवाँ मुर्दा सब से खराब है। वह है महापापी, जो स्वयं पाप करता है और दूसरों को पाप सिखाता है। उसका समूचा ऐसा चित्रगुप्त करता है। बहुत ही लेने का देना पड़ेगा। यदि पाप छोड़ दे तो 'पाई न गति कह पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना'।

इस प्रकार राम मरे हुए को जिलाते हैं। जो ही जीना चाहे वह राम नाम का अधिकारी है।

कोई भी ग्रन्थ क्यों न हो उसमे सब से पहले वाणी और अर्थ का ध्यान रखना पड़ता है। यों तो वाणी भाषा हुई, जैसे वेद की है संस्कृत वाणी और तुलसीकृत रामायण की है साधारण बोली की भाषा, जिसे हिन्दी के अन्तर्गत मानते हैं।

वाणी के अन्तर्गत बारह शब्द हैं जिनका प्रकाश समूचे ग्रन्थ पर पड़ता है। अर्थात् वे बारह शब्द ग्रन्थ की रीढ़ हैं। इनके जो अर्थ बताये गये हैं वे इस ग्रन्थ के आधार हैं। इन्ही के द्वारा ग्रन्थ का असली अर्थ समझना होता है। जैसे पार्वती हैं श्रद्धा और शिव हैं विश्वास, इत्यादि। फिर एक बात और। इस अर्थ मे भी विराट शब्द-शक्ति है, जो आरम्भ से आज तक के शुद्ध ग्रन्थों में शब्दान्वित है। जैसे रामायण की बात लीजिए। उसका अर्थ केवल शब्दकोष या व्याकरण देखकर यदि लगाया जाय तो असली अर्थ हाथ से प्रायः निकल जायगा। पहले के ग्रन्थों की शरण लेनी चाहिए 'जेहि सुमिरत सिधि होय'। फिर रूपक-शक्ति की ओर ध्यान रखना होगा। इन रूपकों के द्वारा मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुच जाता है—'मूक होहि वाचाल'। फिर रसों का समुद्र है; वहा स्वादिष्ट है और उसमे घबडाहट नहीं है—सदा क्षीरसागरशयन। शब्द-रूप-रस का आनन्द लिया हुआ भी क्या काम आया यदि महाप्राण संचरित न हुए। पाचो इन्द्रियों को शुद्ध करे वही 'महाकाव्य' है—कुन्द इन्दु सम देह। और पाचवीं शक्ति है कि गुरुवचन (अर्थात् वेद के मूल वाक्यों

का अर्थ और अर्थदाता) सूर्य की ज्यों चमक उठें; रात की ढेर न हों—जासु वचन रविकर निकर। और छठी शक्ति तो प्रवक्ता के हृदय और मुंह मे अन्तर्हित है। वह तो अब प्रकट होनेवाली है तुलसीकृत रामायण के रूप मे। इसी छठी शक्ति के अन्तर्गत है पाठकोंकी समझ। इसमे भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी पाठक आ गये। इनके द्वारा महाकाव्य अमर होता है। वह तो ध्यान करने वाली शक्ति है। इसका ध्यान कौन करे ?

वाणी का भी पहला शब्द है वाणी। उसका प्रकाश्य रूप है वेद। हर उन्नत देश मे हर लोकप्रिय भाषा में किसी न किसी सौम्य रूप में ज्ञान और रसवाणी उक्त और लिपिबद्ध है। वाणी अर्थात् बोली कहीं तो रहेगी। कोष मे जब शब्द रहते है तब तो बन्धन मे हैं। वेद में शब्दों को ऊंचा से ऊंचा पद मिलता है। भद्दे साहित्य में वाणी का अधम पद होता है। शब्दोंका भंडार मनुष्य का सब से बड़ा आविष्कार है। इसके द्वारा उसका संसार पर अधिकार है। इसी अधिकार का चरम विस्तार वेद के द्वारा हुआ। आकाश मे विष्णु का परमपद उत्तम अनुभव है और उसका श्रवण वाणी मे वेद का परमपद यही गुरुपद है। जो कई गुरुओं के नाम गिनाते हैं वे यदि गुरुभेद करते है तब तो बड़ी भूल करते हैं। परन्तु जो भी गुरुपद मे आश्रित हैं वे एक परमगुरु के रङ्ग मे रंगे हुए हैं। वे सब एक हैं, जैसे परमात्मा गुरु, वेद गुरु, राम गुरु, नरहरिगुरु, और हमारे तुलसीगुरु।

शब्दों मे हमारी ऊंची से ऊंची पहुच वेद में है। इसलिए सामवेद और रामायण वेद की वन्दना सबसे पहले करते हैं। सामवेद वेद की वन्दना करता है यह आश्चर्य की बात नहीं है।

यह वा वेद की सत्यवादिता है और अपने आप वेदविषयक नाना धर्मों को मिटानेवाली बात है। वेद एक है। उसका सबसे व्यापक रूप है ऋग्वेद। उसके चार मुख्य गुण हैं। सुरुचि, सुवास, सरसता, अनुराग। उनकी पूर्ण उपलब्धि के लिए यजुर्वेद यज्ञ के सुवास को लेकर विशेष रूप से प्रगट हुआ। रसों को लेकर सामवेद। और अथर्ववेद आत्म-ज्ञान रूपी अनुराग की व्याख्या है। कौन-सा वेद पहले-पहल प्रगट हुआ, कौन-सा पीछे, या सब साथ प्रगट हुए इस झगड़े में तुलसीदासजी नहीं पड़े। चार चौपाइयों में चारो वेदों और उनके उपवेदों की ओर संकेत कर दिया। जैसे ऋग्वेद का उपवेद है आयुर्वेद। उसकी ओर 'अमिय-मूरिमय चूरन चारू, समन सकल भवरुज परिवारू' इन वाक्यों द्वारा इशारा हो गया। यजुर्वेद का उपवेद है अर्थ-शास्त्र। उसका सम्पर्क एक ओर है 'जनमन' से और दूसरी ओर 'तिलक' अर्थात् राज्याभिषेक से। जनशक्ति और राज्यशक्ति में समूचा अर्थशास्त्र आ गया। सामवेद का उपवेद गन्धर्ववेद है, जिसकी उपलब्धि 'दिव्यदृष्टि' से होती है। इस बात का प्रत्येक कलाकार साक्षी है। उसी के द्वारा दैवी सम्पदा प्राप्त होती है। नहीं तो अन्त तक बड़ा से बड़ा मनुष्य वा देश वा समाज मुरझा जाता है। अथर्ववेद का उपवेद धनुर्वेद है। धनुर्विद्या में वही प्रवीण है जिसे लक्ष्य छोड़ कर अन्य कुछ दिखे ही नहीं। इन सब का फल है सुदर्शन। पर्वत सा ऊंचा नाम। वन सा विस्तृत सार्थक रूप। और पृथ्वी जैसी कर्मभूमि की पहचान। यों थोड़े से शब्दों में अर्थात् चार चौपाइयों समेत एक दोहे में तुलसीदासजी ने चारो वेद, उपवेद और समग्र दर्शन का सार दे

दिया है। यहां एक बात कह देनी बड़ी आवश्यक है। जैसे पैरों में दस नख हैं वैसे दिव्य पद के दस रूप माने जाते हैं। वे ही अवतारवाद में दस प्रधान अवतार हैं। वे सनातन सत्य हैं। दिव्य शक्ति चाहे इस लोक की हो या अलौकिक हो—उसे दस रूपों में हम पाते हैं। ज्ञानी वा साधक उसे चाहे एक रूप में या डेढ़ रूप या दो अथवा अधिक रूपों में देखे, परन्तु वेद की व्याख्या के लिए दस रूप सुगम पाये गए हैं। उनके हम चाहे और भी भाग कर लें, परन्तु मनुष्य हृदय में उन्हें दस प्रधान रूपों में देखा है—उसके दस इन्द्रियों के झुकाव के कारण कहिये। जो हो; ईश्वर शक्ति के प्रगट होने पर देखा गया है कि उसके तीन प्रधान कर्म हैं—(१) साधुता की रक्षा (२) दोषों का नाश (३) इन दो कर्मों के कारण जो अच्छी स्थिति पैदा हुई उसे दृढ़ कर के धर्म-स्थापन करना। इसलिए वेदों की तीन संख्या कही जाती है। तीनों कर्म सभी वेदों में हैं। परन्तु विशेष उपयोगिता के लिए तीन रूप हो गये। जिस समय धर्म-त्रयी का ध्यान किया जाता है उस समय कहा जाता है कि वेद तीन हैं। जिस समय चार पुरुषार्थों की ओर ध्यान रहता है उस समय कहा जाता है कि वेद चार हैं। जब वेद तीन होते हैं तब चौथा वेद (अथर्ववेद) पहले वेद ऋग्वेद में जा मिलता है। सामवेद के उत्तरार्चिक के आरम्भ में तीन-तीन मन्त्रों के तीन गुच्छे हैं। उनमें पहला है ऋग्वेद के प्रतिपाद्य विषय को; अथर्ववेद की और उनके उपवेदों को लेकर। वागर्थ की अभिन्नता दिखायी गयी है 'पवमानायेन्दवे' की सन्धि से। महापवमान का अर्थ है विशुद्ध संस्कृत वाणी। इन्दु का अर्थ है अर्थ-

समूह का प्रकाश। देवों की शक्ति को स्पष्ट रूप से दिखाता है। अभिदेवा इयक्षति। इसे जानने की किस सत्पुरुष को रुचि नहीं होगी ? इस सुरुचि की पूर्ति जो ग्रन्थ करता है उसको नमस्कार है। वह आत्मा को इतना प्रिय है कि अथर्वण की तरह आत्मा को तृप्त करते थकता नहीं है, कारण अथर्वण शक्ति अपने अन्दर है। मानो मधु और दूध पिला-पिला कर हमें परमबली बनाता है। मधु है परस्पर प्रेम और दुग्ध है सुन्दर भावों की अमृत-धारा। अभिते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयु। इतना ही नहीं। हमें बता देता है कि देवं देवाय देवयु। विशुद्ध आत्मा स्वयं देव है। महादेव के लिए देव रुचिकर रस की सृष्टि करता है। उसकी शक्ति का क्या अन्त है ? गोलोक अर्थात् विराट आयु उसके लिए शांतिमय है।

सामवेद के उत्तरार्चिक के प्रथम अध्याय के प्रथम खंड में नव मंत्र हैं। इनमे समस्त वेदो, उपवेदों और रसों की वंदना है। यह वाणी की वंदना है। क्यों न हो? वाणी की आदर्श वंदना तो ऐसी ही होगी। वाणी जैसी पवित्र शक्ति से क्यों न हम संसार भर के ज्ञान और रस को पी लें? दूसरे खंड मे बारह मंत्र है। इनमे अर्थ समूह की याचना है, विनायक की वंदना समझिये। क्योंकि विनायक शब्द न आकर सुवीर्य, शब्द प्रयुक्त हुआ है। बात एक ही मालूम होती है, कारण इस प्रसंग में गम्भीर बुनियादी अर्थ लिया गया है, न कि पौराणिक कथाओं का या शाब्दिक रूप का—यद्यपि इनका भी अंत मे जाकर अर्थ वही है। इसी प्रकार राम नाम का भक्त कह सकता है कि राम शब्द न आया न सही, हम तो तत्व को लेगे। हमारी दृष्टि मे राम और विनायक मे कोई तात्विक भेद नहीं। राम का बालरूप है विनायक-यदि हम कथाओं मे न बंधे रहें। तब तो तुलसीदासजी के निम्नलिखित पद विनायक रूप को और सामवेद के इन बारह मंत्रो के भाव को प्रकट करते हैं।

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक।
चरन कमल बंदउ सब लायक।
राजिव नयन धरे धनु सायक।
भगत बिपति भंजन सुखदायक।

नाम कहा गया। वाल्मीकि को आगे चलकर कवीश्वर की पदवी मिली। फिर हम तुलसी को कवीन्द्रत्व प्राप्त मान सकते हैं, हाल में रवीन्द्र को समस्त जगत ने माना।

इसी द्वितीय अध्याय के प्रथम खंड में रामायण के पहले सोरठे की भी व्याख्या साथ-साथ चली है। यह काव्यकी विशेषता है कि नायकत्व को तात्विक दृष्टि से एक मानते हैं। गणनायक, रघुनायक और करिनायक में भेद होने लगे तब तो दिव्य नेताओंके पारस्परिक विरोध में धम डूब जाय। किसी ने पूछा कि तुलसी दास जी को क्या राम के दर्शन हुए? न हुए तो इन्होंने राम को हृदय में कैसे रखा, वाणी पर कैसे लाये और दूसरों को राम कैसे दिखाया? अतः प्रथम खण्ड में पहले सोरठे

'जेहि सुमिरत सिधि होय, गन नायक करिवर बदन।
करउ अनुग्रह सोई, बुद्धि रासि शुभ गुण सदन'॥

की व्याख्या है। पहले मन्त्र में इन्द्र अर्थात गणेश रूप को पुकारते ही चार सिद्धियां प्राप्त होती हैं। (१) सम्मुख उपस्थिति (२) सब शत्रुओं का तिरस्कार (विश्वासाह) (३) सैकड़ों प्रकार के कर्म (शतक्रतु) (४) मनुष्यों में मान (महिष्ठ चर्षणीना)। आगे सब वाक्यों का अर्थ दिया गया है। यहा करिवर बदन का प्रत्यक्ष उल्लेख तो नहीं है, मद का उल्लेख है। अर्थात हाथी के पाशविक मुखाकृति को ओर

का अर्थ निकलता है। सामवेद में एक बड़े मार्के की बात है, 'रणन्ति सप्त संसदः'। सात होता रमते हैं। इससे सप्त सोपान की ध्वनि निकाली जा सकती है।

द्वितीय खण्ड में कपीश्वर का उल्लेख तो नहीं है, परन्तु वन के अनेक जीवों का वर्णन है। उनका ईश्वर इन्द्र है। वनवासी भक्तराज की महिमा का अति सुन्दर वर्णन है। उन्हें रामायण में कपि क्यों कहा गया, यह तात्कालिक नीति की बात है। इसी द्वितीय खण्ड के चार भागों में मूक ऐसा वाचाल होता है कि शृंगवृष हो जाता है। अर्थात् नामी ऋषि भी हो गया और ऊंचे स्थान से वृष की तरह शोर करता है। पंगु महाहस्ती होकर संसार वन के सभी विघ्नबाधाओं को नष्ट करता है और शूरसिंह होकर शिखर पर पहुंचता है। इन उपमाओं में और भी गम्भीर अर्थ है। यों ही सोरठे के बाकी पदों की व्याख्या है। तृतीय खण्ड में राम वल्लभा सीता का नाम नहीं आया, परन्तु राधानां पते का उल्लेख है। यहाँ राधानां का अर्थ है दैवी सम्पदा। उसी के साथ-साथ नील सरोरुह श्याम वाले सोरठे की व्याख्या है। क्षीर सागर शयन कैसा, सुपारः सुश्रत्रतमः समत्सुजितः। भवसागर पार, दैवी संपदा से पूर्ण और विद्या समुद्र पर और रसों पर पूर्ण अधिकार। करहु मम उर धाम कैसे, भावानः सुम्ने अन्तमः सखा वृधेः। शब्द स्पष्ट हैं भाव अथाह है। अनुवाद कैसे करूं ?

चौथे खण्ड में अवतार का वर्णन है। नाम चाहे राम का न दिया गया हो। कुन्द इन्दु समदेह वाले सोरठे का भी स्मरण होता रहता है। उमा रमण की उमा का उल्लेख नहीं है, परन्तु

रूपक भिन्न है। जैसे राम धनुष बाण धारण करते और सामवेद के इन्द्र मंत्रयुजा मंत्रयुक्त केशिनाहरी अर्थात् केशवाले पाप-नाशक अश्वों अर्थात् विद्वानों को अर्थ-सिद्धि के लिये दौड़ाते हैं। यहाँ प्रसंगवश एक बात और स्पष्ट हो गयी है। वह यह कि राम शस्त्र भूत दीखता है, परन्तु उनके शस्त्रों के अनेक रूप हैं। अवसर के अनुसार वे विद्वत्ता रूपी धनुष से मंत्रबाण भी चला सकते हैं। धनुष बाण पुराने पड़े तो विद्या और मंत्रार्थ सदा नवीन होते रहते हैं। आज वे धनुषबाण का एक पहला प्रकार हैं। जहाँ अर्थ-समूह की बात है वहा नाम समूह का होना स्वाभाविक है। अग्नि हैं परंतप। वे मनोयोग से आसन पर बैठे हैं। फिर वचन से अंगिरा रूप धारण करते हैं और बृहत चमत्कार दिखाते हैं। यों यथानाम तथागुण का तांता बंधता चला जाता है—ग्यारह मंत्रों के चार भागों में।

तीसरे खंड मे श्रद्धा की वंदना है। उसका जन्म ऊंचा है। पुराणों के अनुसार उसकी पार्वती मर्यादा है। पहले तीन मंत्रों में प्रणिपात द्वारा, फिर दो मन्त्रो में परिप्रश्न (आपृच्छ्यं) द्वारा, फिर तीन मंत्रों में सेवा द्वारा श्रद्धालु भक्त ज्ञान प्राप्त करता है। चौथे खण्ड में बड़ी निश्चितता के साथ समाधान हो रहा है। उसमें दो मन्त्रों में आर्त को, तीन मंत्रों में जिज्ञासु को, फिर दो मंत्रों मे अर्थार्थीको और दो मन्त्रों में ज्ञानीको मनचाहा फल देकर विश्वासपूर्ण किया जाता है। ज्ञानी को तो यह भी विश्वास दिलाया जा रहा है कि शब्द नाम में उलझे मत रहो, यशनाम को पाते रहो।

पांचवें खण्ड मे गुरु द्वारा नित्य बोध मिलता है। पहले पांच मंत्रो मे पांच भौतिक प्रकृति का; फिर तीन मंत्रों के तीन

गुन्छों मे पुरुष के धर्म-त्रयी अर्थात् साधुता-रक्षा, दोपनाश और धर्म-स्थापन का बोध है। बोध भी कैसा कि त्रिपृष्ठ; तीनों लोकों का। तपसो विराजसि। अर्थात् गुरु गुरु हुए तो क्या हुआ ? सूर्योदय की ज्यों नई ज्योति मे सबसे आगे बढ़े हुए हैं। ऐसे गुरु न होते कभी अस्त, न होते वक्री, न नीच, न लघु, न परे।

षष्ठ खण्ड मे शिष्य फिर क्यो कम रहे ? गुरु उपदेश से लाभ उठाने की पूरी शक्ति रखता है--पहले चाहे वक्र रहा हो। यह तो तीक्ष्ण 'बुद्धिवाले बच्चों का स्वभाव है, परन्तु गुरु उस समुद्र पुत्र को विद्या के समुद्र मे गोता लगवाते हैं। तत्र एभिर्वर्द्धसि इन्दुभिः। नये चंद की ज्यों उत्तरोत्तर बढता रहेगा। यही स्वभाव है और गुरु आज्ञा भी। उदेव मन्त उदभिः। इस वचन को प्रचलित अर्थ है कि जल से राह चलते के साथ छेड़खानी की। यह अर्थ मुझे कम जँचता है। उस वचन का यह अर्थ लेना चाहिए कि गुरु की विचारधारा पहले से चल रही है। उसमे शिष्य अपनी विचारधारा का योग कराता है। तभी गुरु और शिष्य दोनो धन्य होते ह।

द्वितीय अध्याय मे अर्थ का भी अर्थ आगे बढ़ता है। पहले अध्याय मे, वाणी की व्याख्या मुख्य थी। अर्थ की व्याख्या गौण, जो यहा मुख्य होती है और विस्तृत भी। प्रथम खण्ड मे, कवीन्द्र का, उसके सुन्दर गुणों का और शिरोमणि पद का वर्णन है, परन्तु नाम का कोई अंत नहीं। आठवें अध्यायके आरम्भमें कवीश्वर रूपसे उशना कवि का नाम आया है। प्रकाव्यम् उशना वन्‌वानो। यहा अर्थात् प्रथम खण्ड मे कण्वों का सामर्थ्य

वही सुन्दरी अर्थात् उपा का वर्णन है। पांचवें और छठे खण्डों में रामायण प्रेमियों के लिए विस्मयकारी बातें हैं। एक ओर तो पुरानी विद्या का पंचम खण्ड में स्पष्ट उल्लेख प्रज्ञ शब्द से है और नूतन विद्या की जड़ धारा की उपमा से षष्ठ खण्ड में है। और यों बारहों वर्ग समाप्त होते हैं। दूसरी ओर जितने प्रकार की, गुरुओं की वन्दना "बंदौं गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि। मोह महातम पुंज जासु वचन रविकर निकर" वाले सोरठे में है उन सब का वर्णन सामवेद के इन पांचवें और छठे खण्डों में है। माननीय नरहरिजी तुलसीदासजी के गुरु थे। इनका उल्लेख तो आता कहां से ? परन्तु वेद, रवि हरि, नरहरि, नररूप हरि सब के गुरुपद की व्याख्या है। वेद का प्रज्ञा में और पयः सहस्रसां ऋषि में।—रवि का अर्थ सूर्य इव। हरि का उल्लेख स्पष्ट है—देव शब्द से और हरि शब्द से।

यों फिर नर होते हुए वनानि महिषा इव; अतः नरहरि। फिर सोमा अर्षन्तु विष्णवे। फिर नररूप हरि, पर्वते हर्यतो हरिः इत्यादि वाक्यों में। यों गुरुपद का गुरुपद में अर्थ का प्रकरण समाप्त होता है।

मुझसे एक धर्म दंडधारी पश्चाद्‌धावी सज्जन ने पूछा है कि जब मीरा तक को वेद से दूर रहना पड़ा तब आज की स्त्रियां कितनी ही शिक्षिता, बुद्धिमती और निर्मलात्मा क्यों न हों, किस कारण से वेदों मे हस्तक्षेप करती हैं। बस प्रश्न से ठीक विपरीत स्त्रियों की ओरसे पूछा गया है कि मीराके पद रामायण के रास्ते मे चलने योग्य हैं या नहीं। और यदि नहीं तब कमसे कम इनारे किनारे हैं कि नहीं। मीरा के पदों का भी वेद से कोई सम्बन्ध है या नहीं।

हिन्दी भाषा में छः ऐसे ग्रन्थ हैं जो साक्षात् ईश्वर हैं। स्थूल हाथ-पैर वाले ईश्वर के दिन गये। अब तो वाणी में ईश्वर का वास है। और वाणी द्वारा कर्म मे। ईश्वर के दर्शन-षट् ऐश्वर्य से होते हैं। ऐश्वर्य आठ भी है और वेद के अनुसार दसरूप हैं। अभी षडैश्वर्य को ही लीजिए। (१) ऐश्वर्य (नित्य) (२) वीर्य (३) धैर्य (४) गाम्भीर्य (५)श्री (६) यश। ऐश्वर्य पदवी सहज मे नहीं प्राप्त होती। ईश्वर मे आ मिले वही रचना ऐश्वर्यमयी होती है। वेदों से हृदय संबंध न रहे, यहा तक कि वेदमयी न हो, तो ईश्वरीय हो नहीं सकती। यह दिव्यसाहित्य सिद्धांत है। यहा पोल और ढोल की गुंजाइस नहीं है।

छ ऐश्वर्य ये हैं —

(१) तुलसी कृत रामायण। जनता के तुलसी रामराज्य

कवि होगए। इन्होंने ऐश्वर्य के स्थायी रूप को नित्य की भाषा मे प्रगट किया। (२) सूर सागर। प्रज्ञाचक्षु अन्तरात्मा में स्व-राज्य प्राप्त सूर जी ने जन-मनके परमप्रिय गोपालकी बाल्यलीला से आरम्भ करके आगे तक की लीला गाकर वीर्य का शुद्ध से शुद्ध और ओजस्वी से ओजस्वी दर्शन करा दिया। यही अनन्तवीर्य है। "युद्ध की वीरता तो ऐश्वर्य में रहती है। (३) मीराकी पदावली। साधारणत लोग धैर्य्य को भार समझते हैं, परन्तु मीरा ने धैर्य्य मे अमृत डाल दिया। मीरा स्त्रियों की स्त्री है। उसी धैर्य का और स्त्रीके धैर्य का उसने आदर्श चित्र उपस्थित कर दिया। (४) बिहारी की सतसई। ये महराज तो विलक्षण रहे। इनके गाम्भीर्य ने तो क्या जनता क्या विद्यार्थी सभी को छका रखा है" पुरुषों के पुरुष हैं। उसी से संभव हुआ कि श्रीरूपका अमर दर्शन दे गये। हर पदमें स्त्री का शृङ्गार बाहरी रूप है। फिर स्त्री की प्रकृत वत्सलता मध्यम रूप है। फिर स्त्रीकी विद्या रूप धारण की हुई लक्षदीपिका की शोभा सात सौ से कुछ अधिक उक्तियोंमें है। रत्नाकरजी के विद्याजनित विनय और सत्यप्रेम के कारण पाठ और क्रम की भ्रष्टता से रक्षा हुई। क्रममें एक अटूट सूत्र है जो सतसईके गभीर अंतरालमें प्राणोंका प्राण है। (५) विद्यापति। उन्होंने स्वयं कहा है —

सखि की पूछसि अनुभव मोय।

जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेला।

पदों के सुन्दर चयन द्वारा कृष्ण की दिव्य छवि की क्या ही मनोरम झांकी दिखा दी! अल्प प्रयास से ही श्री का पूर्ण

ऐश्वर्य खड़ा कर दिया। उनकी याक् श्री ने यह भी दिखा दिया कि वे और कवि श्रुति-पथ पर हैं। (६) कबीर। वे यश के कवि हैं। आज के वातावरण में यह विषय सबसे कठिन है। यश का प्रधान अंश है त्याग। अपने को दृढ़ करने के लिए हठयोग का सहारा भी लेता है। इसकी प्रतिमा नहीं है। 'न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नामो महत् यशः'। यह वेद वाक्य है। ईश्वर अपने यश का एक ही ज्वलंत प्रमाण देता है कि उसके प्रकाश का श्रेय भेद बिना, चाहे ब्राह्मण हो चाहे जुलाहा, जो ही खोजता है वही पाता है—गहरे पानी पैठ। यह अंतर्ज्योति है जिससे कबीर साहब ने बीजक का आरम्भ किया है।

सोने में सुगंध आ जाती है जब हम इनके साथ बंगला भाषा में उक्त कीर्तनों तथा रवीन्द्र गीतों को जोड़ देते हैं, कारण वे हमारे हैं और हमारे ग्रंथ उनके हैं। इतना तो अवश्य है कि एक दूसरे की व्याख्या करते हैं, एक दूसरे में रम जाते हैं। सभी बड़े प्रेम से मिलजुल कर वृहत रामायण के रास्ते बनाते हैं। मैं तो उसमें संसार भर के साहित्य को संग लेने का प्रार्थी हूँ।

बहुतों की धारणा है कि मीरा गा गईं, भक्ति दिखा गयीं कुछ मीठे बोल दे गईं? मीरा का भी कोई दर्शन है? अब यही हमें देखना है। सभी उच्चतम रचनाओं की एक निश्चित रीति है कि वे क्रमबद्ध होती हैं। आरम्भ में उनके अन्त तक की सूचना दे दी जाती है। डाकोर की प्रति के अनुसार पहली पंक्ति आजकल की भाषा में यों है, "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई"। इसके द्वारा सूचना मिली कि मीरा ने धैर्य्य (गिरधर) को प्रधान अवलम्बन माना। गोपाल शब्द से सूचना मिली

कि इहलोक और परलोक दोनों में मीरा मन वचन कर्म से कृष्णार्पण करती है। 'दूसरा न कोई'। कृष्ण छोड़ कर दूसरा कोई विषय पदावली में नहीं आया है। इतना अनुसंधान मिलने के बाद आगे का पथ सुगम हो जाता है। ६६ (या यों कहिये ७०) गीतों का वह संग्रह है। उनके संकेतों द्वारा स्पष्ट होता है कि दस भाग हैं। एक-एक भाग में वेद वर्णित रूपों के एक-एक रूप हैं। पहला रूप नित्य है। उसमें आत्मा और शरीर से परिचय होता है। ज्योतिष में उसे लग्न स्थान कहते हैं। मीरा ने लग्न शब्द को भी संभवतः दोमानियां अर्थ के अंतर्गत कर दिया है। जो हो छः गीतों के अन्त में 'सांवरे मारा तीर' और मीरा का 'व्याकुल हुआ शरीर'। इस तीर के दर्शन को बिहारी, तुलसी सभी ने माना है। इसके प्रेमसे 'घायल की गति घायल जाने और न जाने कोय'। कृष्ण जिसे चुन लेता है उसी पर तीर मारता है और अन्त तक पीछा नहीं छोड़ता। मीरा शांति के लिए दौड़ती है। दूसरा रूप यहीं से आरम्भ होता है। बिंदा के जल बिना शांति कहाँ और कैसे ? चालों मनवा जमुना के तीर। जमुना है स्याही की, काली धारा गंभीर विचारों—की। उसके किनारे कृष्ण गुरु रूप से बैठा करता है। यह वेद का द्वितीय रूप अर्थात् मद्य रूप है। वहां बुद्धि ठिकाने आती है और बहुत बड़े-बड़े यज्ञ अर्थात् शुभकर्मों की बातें भी होती हैं। साथ-साथ वंशी बजती है।

कृष्ण जी विश्वगुरु हैं। उनके विश्व-विद्यालय में जो भर्ती हो जाता है वह स्वयं छोड़े तो छोड़े, परन्तु कृष्ण उसे नहीं छोड़ता। गरीबों के लिए विशेष प्रबन्ध है। अन्त तक डटा रहने वाला कोई विद्यार्थी फेल करता नहीं और विश्व भर की मार से हारता नहीं। कृष्ण को गुरुपद से हटाने के लिए न मालूम कितना कलङ्क लगाया गया, परन्तु वह तो अब कलकी अवतार बने बैठे हुए हैं। कृष्णा कृष्णोति जिह्वया। उनकी जीभ में ऐसी मिठास है कि सुनने वाले को कृष्ण अर्थात् निजी बना लेती है और उसमें इतना बल है कि बात ही बात में दुष्टों का मुंह काला कर देती है। और अपने परंतप से जो ही अर्जुन हो उसको परतप बनाती है। पढ़ाने के दो तरीके हैं। एक में गुरु बोलता है और शिष्य सुनता है ? और आवश्यकता-नुसार प्रश्न पूछता है। वह है कृष्ण-अर्जुन पद्धति। दूसरे में शिष्यात्मा अपने हृदय को खोलकर गुरुके सामने रखती है और गुरु के मौन इशारों पर अपने आप नाना चेष्टाओं द्वारा स्वयं समाधान पा लेती है। यह है मीरा गिरधर पद्धति। संसारमें एक ही मीरा हुई। वह धनी सरताज है। अनेक स्त्रियाँ अनेक प्रकार से ख्याति पा चुकी हैं। कई मीरा से अधिक। परन्तु 'सांवरा मारा एक तीर' फिर चुप। 'मीरा मारी हजार' और आज भी सन्तुष्ट नहीं। सारांश यह है कि जिस भक्त को कोई अन्य

सहारा नहीं, जिसके दूसरा न कोई, जिसे बाधा देने वाले अनेक, परन्तु राह बताने वाला एक नहीं, उसके आकाश मे एक ही मीरा है। विदेश की कहावत है कि भक्ति पहाड़ों को सरका सकती है। मीरा की भक्ति गिरिधर को अपना लेती है। यह है लगन की महिमा। स्त्री हृदय का बल।

स्त्री-हृदय रासायनिक छानबीन की चीज नहीं है। नवो रसों के एक संग रास से उसका कुछ अनुभव होता है। स्त्री-हृदय की करुणा, विनोद, व्यर्थ शंका, उस पर डाट। निज बार अपने पुरुष को मातृवत् सभी चिन्ताओं से मुक्त करती है और और कर्त्तव्य का सुन्दर पाठ पढ़ा देती है। जनम-जनम की संगिनी होकर जनम-मरण के महत् भय से अपने सरल, सीधे, स्वल्प धर्म और दर्शन द्वारा रक्षा करती है। समाज का वीभत्स रूप स्त्रियों को लेकर होता है। उस पर स्त्री-हृदय निर्मम प्रहार करता है। और दोषी स्त्री सबको विरूप करती है। उत्तम स्त्री द्वन्द्व नहीं जानती। उसकी बुद्धि में एक व्रत है। एक सूर्य की ज्योति में एक चाल चलती है। इसलिए उसका विरह प्रचंड तो होता है, लेकिन भूला-भटका नहीं—सदा पति के पास। आश्चर्य की बात है, परन्तु असलियत यह है कि उसको पति के भिन्न नाम तक में रौद्रता दीखती है, सहन नहीं होती; एकता चाहती है। पति चाहता है लीला, शृङ्गार। स्त्री चाहती है, एकता, अंगीकार। बस, यही अनन्त वियोग है। यही विरह का अमिट कारण है। फिर भी पति को सामने रखना भी चाहती है, नहीं तो शृङ्गार कैसे हो और किसे दिखावे ? गीत कैसे रचे और किसे सुनावे ? वह पति के मायामनुष्य रूप पर दाना

मारती है और उसके कृष्ण रूप पर बलिहारी होती है। यों मन-वचन-कर्म से सोलहो शृङ्गार करके षोडश मातृका होती है। अब तो आश्चर्य का ठिकाना क्या है? रात का दिन और दिन की रात भ्रम से नहीं, वरंच मुनिमन चैतन्य से। विरह सब ऊपरी था। शांत का साम्राज्य है। इस आश्चर्य का ठिकाना क्या है? हृदय ही हृदय है। मीरा के लिए नवो रसों का तो रास है। अपने गीतों की असली गम्भीरता और ललाई को छिपाये रखती है। प्रत्येक गीत को ऐसा देती है मानो एक खिल्ली पान हो। यह मीरा का रचारचाया है। इसका दर्शन? इसका दर्शन तर्क में नहीं है। घर-घर में मीरा का अमृत पान है।

मीरा पदावली के डाकोर की प्रति के प्रथम छः गीतों में नित्यरूप है, भगवान् का और स्त्रीहृदय का। द्वितीयसर्ग का आरम्भ होता है यमुना के तीर पर और सात पदों में अर्थात् सातवें में शिष्या और गुरु गोविन्द एक दूसरे को मोल ले चुके। आदि, मध्य, अन्त यह तो अजीब व्यापार है! यों शिष्या व गुरु आपस में बिकने लगें तब तो माताओं को बड़ी चिन्ता हो जायेगी। परन्तु मीरा कहती है, 'माई री, यह है पुरबजनम का कौल'। जिसे वेद मे कहा है, प्रथमं पूर्वं दिवि प्रवाच्यं कृतं।

फिर तीसरा रूप आता है। यह है कर्मरूप। कर्म हरि के चरणों में है। इसलिए तीसरे पर्व के आरम्भ मे मीरा कहती है। 'मन थे परस हरि रे चरण' फिर प्रह्लाद ध्रुव इत्यादि को याद करती है। वैसे ही तुलसीदास जी ने कहा था :—

नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि मे प्रहलादू।
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊं। पायउ अचल अनूपम ठाऊं।

तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भक्तो के ग्रन्थों से अधिकाधिक लाभ और आनन्द मिलते हैं। इसी कारण मुझसे कहा गया कि रामायण के रास्ते मे चलते चलते मीरा के पदों के विषय में जो प्रश्न उठे हैं उनकी चर्चा करते चलो। अभी तक मैंने निवेदन किया है कि मीरा के प्रथम ६६ या ७० गीतों मे वेदविहित दस रूपों का वर्णन है। जो उनमें केवल दो तीन रसों की प्रधानता देखते हैं उनसे नम्र निवेदन है कि दसों रूपों की अत्यन्त सरस चतुर विज्ञानमाला को न भूलें। जो केवल विधवा की कराह सुन पाते हैं उनके सामने तो बहुत काम अधूरा पड़ा है। इन प्रथम सात रूपों का दिग्दर्शन कर चुके हैं। सातवाँ रूप मर्यादा का है। मीरा जोर से कहती है कि उनका प्रभु जनम जनमका सच्चा है। अब आठवाँ रूप आता है। वह ४६ वें से ५५ वें गीत तक है। यह है अध रूप। निधन भाव है। इसमें बादल दीखते हैं। विध विधना री न्यारा। पियाबिनु सूनो छै म्हारा देश। करमगत टारा ना टरै। धीरज कैसे धरे। उसका एक अमोघ मन्त्र है। मीरा रे प्रभु थारी सरणाँ जीव परम पद पायाँ। इसके बाद नवाँ रूप आता है ५६ वें से ६३ वें गीत तक। यह अन्तर रूप है। भाग्य भाव। धर्म भाव भी। इसलिए सब भगताँ रा कारज साधाँ। भाग्य का खेल जैसा है उसे खेलेगी। नाच नाच म्हा रसिक रिझावा प्रीति पुरातन जाँचा री। अन्त मे हृदय की बात निकल पड़ी।

एक वाक्य में कितनी वेदना छिपी हुई है। थारो रूप देख्या अटकी। कब तक? अन्त मे बाहर तो जाना ही है। ६४ वें से अन्त ६६ तक इसकी चर्चा है। बड़े घर ताले लागा री पुरबला पुन्न जगावां री। इतनी शक्ति लगाये बिना ताला कैसे खुलेगा? बड़े घर वाले तो स्वयं रण छोड़कर भाग चुके हैं। मीरा पूछती है क्यों हमारा 'जनम बारम्बार'। पूर्व के कौन से पुण्य खोटे है। इतने मे अचानक याद आती है कि यह सब तो प्रियतम की माया है। खेल है। तब पुकार उठती है। रास पुन्यू जनमिया री राधिकाअवतार। जैसे जैसे प्रभु लोगों की पीडा हरने बाहर जाते है वैसे वैसे मीरा कहती है, भूलो नहीं कि मेरी बाँह पकड़े हुए हो। मेरे साथ सप्त पद फेरे हुए हो। बाँह और चरण की लाज तो तुम निभाओ। तुम्हारी हो चुकी तो बस लायक रखो। दूसरों को बचाते हो तो मुझे भी बचाये रखो। जहा जाव वहा मुझे सेवा मे साथ लेते चलो। अचल भक्ति मे अमर जीवन अपने आप होता है।

इन ६६ या ७० गीतो मे डाकोर की प्रति समाप्त होती है। इनमे दसों सनातन रूप दर्शाये गये हैं। यह अमर जीवन का दर्शन है। इसे तुलसीदास जी ने अपने ढंग से कहा है।

अब काशी की प्रति सामने आती है। इन गीतों पर नम्बर दिये गये हैं ७० से १०३ अर्थात् ३४ गीत। जैसे १ से ६६ तक के गीत अमर जीवन के गीत है और जैसे वे दस रूपों मे प्रकट है वैसे ही ७० से १०३ तक मृत्यु पर विजय के गीत हैं और आठ विभागों मे विभक्त हैं। जैसे दस रूप वेद के अनुसार है वैसे ही अष्ट ऐश्वर्य भी। मृत्यु के आठ प्रकार

ये नाम पीछे के हैं, परन्तु भाव वेदों की गूँज है। कर्म के रहस्य को गाते हुए निष्काम भाव में आती हैं। लाल-पान म्हाने फीका लागा। भवताप से बचावे कौन? जदि वैद साँवरो होय। महाकाल द्वारा योग भ्रष्ट होता है। उसकी चोट भक्त और भगवान को समान लगती है, और किसीको नहीं। घायल की गति घायल जाने जिवड़ो अगण संजोय। इसलिए चतुर मीरा इधर-उधर का इलाज न करके असली वैद्य को ही बुलाती है। और अरि के दर्द को शिकायत करती है, जिसमें कि उसको असहायता को समझ कर वैद्यराजजी तुरन्त दौड़ आयें। दर्शन जब नहीं मिल रहा है तब तो संगीन अवस्था है। मीरा की चाल ठीक रही। दर्शनहीन समझ कर श्यामने बाह पकड़ ली है। अब जब सुदर्शन स्वयं आकर दर्शन दे रहे हैं तब क्या कोई कहता ही रह जायगा कि मीरा में दर्शन नहीं है या वह दर्शन सुदर्शन से भिन्न है, या वेद का दर्शन अलग और मीरा का दर्शन अलग है। समूचा दर्शन इसी में है कि कृष्ण स्वयं आकर पुराने योग को भव रूप से दुहराते हैं। तीसरा रूप १४ वें गीत से २१ वें गीत तक था। अब चौथा रूप २२ वें गीत से २७ वें गीत तक है। इलाज तो निस्सन्देह सफल रहा। परन्तु इलाज को बढ़ाए रखने के लिए अन्य शिकायतें बहुत रहीं। अन्त में बात खुल पड़ी। प्रभु के दर्शन समान सर्वदा सर्वत्र न होते रहें तो रोग नहीं मिटेगा। इसलिए पद-पद में 'संग ही चली थे चरण आधारा'। अब पाँचवाँ रूप आ गया। २८ वें गीत से ३४ वें गीत तक मीरा कहती है 'साँवरो म्हारी प्रीति निभाज्यो जी'। अर्थात मैं समदर्शी रहूँगी ही। तुम रहोगे न? भगवान को ऐसा कहने

वाला कोई भक्त नहीं मिला था। मीरा कहती है म्हारी घर होता आज्यो महाराज। अर्थात् मुझे इसी घर में दर्शन दो। वेद में भी भक्त घर से घबड़ाता है और भगवान समझाता है कि अपने घर से घबड़ाओ नहीं। जहां हो वहीं परम सुख पा लो—इसी योनि में, इसी गोष्ठी में, इसी लोक में, इसी व्यवस्था में। घबड़ा कर अन्यत्र भाग कर कौन सी सुविधा अधिक पाओगे? मीरा आदर्श-गृहिणी है न! भगवान को सब तरह के आराम बता दिये। 'नयन बिछा दूंगी' से लेकर 'बांह गहे की लाज' तक सब गिना देती है। फिर पूछती है, तुम्हें कौन-कौन बोल सुनाऊं, म्हारा सांवरा गिरधारी। फिर तो बड़े करुणाजनक शब्दों में कहती है:—चरण शरण री दासी मीरां। जनम-जनम री क्वारी। फिर छठा रूप आता है ३६ वें गीत से ४१ वें तक। यह विदिशा रूप का प्रसंग है। अत्यन्त प्रसिद्ध गीत से आरम्भ होता है, म्हाने चाकर राखो जी। अर्थात् तुम्हारा जहां हो स्थान हो वहीं मुझे चाकर रख लो। वहां से अन्त के वाक्य तक मीरा रे प्रभु गिरिधर नागर थे बिनु फटा हिया। विदिशा भाव से ऐसे मार्मिक पद अन्यत्र शायद ही मिलें। सातवां रूप ४२ वें गीत से ४८ वें तक में है। वह ऊर्ध्व रूप है: जाया भाव है। यहां भी मीरा ने विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम को ऐसा दर्शाया है कि दंग रह जाना पड़ता है। स्त्री बिना किसके हृदय में यह उपजती कि इन शब्दों में मधुर मिलन का आरंभ करे:—थे बिन म्हारे कौन खबर ले गोबरधन गिरिधारी। फिर म्हारे जनम-जनम को साथी। प्रियतम को वह किस स्थल में आकर बसने का संकेत करती है? बसो मेरे नयनन में नन्दलाल। मीरा के नयनों में बस तो लें, फिर मीरा नाच दिखावेगी। पग बांध घुंघरिया नाची और दुनिया को भगवान की शरण का पथ दिखावेगी।

तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भक्तों के ग्रन्थों से अधिकाधिक लाभ और आनन्द मिलते हैं। इसी कारण मुझसे कहा गया कि रामायण के रास्ते में चलते चलते मीरा के पदों के विषय में जो प्रश्न उठे हैं उनकी चर्चा करते चलो। अभी तक मैंने निवेदन किया है कि मीरा के प्रथम ६६ या ७० गीतों में वेदविहित दस रूपों का वर्णन है। जो उनमें केवल दो तीन रसों की प्रधानता देखते हैं उनसे नम्र निवेदन है कि दसों रूपों की अत्यन्त सरस चतुर विज्ञानमाला को न भूलें। जो केवल विधवा की कराह सुन पाते हैं उनके सामने तो बहुत काम अधूरा पड़ा है। हम प्रथम सात रूपों का दिग्दर्शन कर चुके हैं। सातवां रूप मर्यादा का है। मीरा जोर से कहती है कि उनका प्रभु जनम जनमका सच्चा है। अब आठवां रूप आता है। वह ४६ वें से ५५ वें गीत तक है। यह है अध-रूप। निधन भाव है। इसमें बादल दीखते हैं। निध निधना री न्यारा। पियाबिन सूनो छै म्हारा देश। करमगतटारा ना री टरै। धीरज कैसे बंधे। उसका एक अमोघ मन्त्र है। मीरा रे प्रभु थारी सरणाँ जीव परम पद पाना। इसके बाद नवां रूप आता है ५६ वें से ६३ वें गीत तक। यह अन्तर रूप है। भाग्य भाव। धर्म भाव भी। इसलिए सब भगतां रा कारज सार्यां। भाग्य का खेल जैसा है उसे खेलेगी। नाचनाच म्हा रसिक रिझावा प्रीति पुरातन जाचा री। अन्त में हृदय की बात निकल पड़ी।

एक वाक्य मे कितनी वेदना छिपी हुई है। थारो रूप देख्या अटकी। कब तक? अन्त मे बाहर तो जाना ही है। ६४ वें से अन्त ६६ तक उसकी चर्चा है। बड़े घर ताली लागी री पुरबला पुन्न जगावाँ री। इतनी शक्ति लगाये बिना ताला कैसे खुलेगा? बड़े घर वाले तो स्वयं रण छोड़कर भाग चुके हैं। मीरा पूछती है क्यों हमारा 'जनम बारम्बार'। पूर्व के कौन से पुण्य खोटे हैं। इतने में अचानक याद आतो है कि यह सब तो प्रियतम की माया है। खेल है। तब पुकार उठती है। दास पुन्यू जनमिया री राधिकाअवतार। जैसे जैसे प्रभु लोगों की पीड़ा हरने बाहर जाते हैं वैसे वैसे मीरा कहती है, भूलो नहीं कि मेरी बाँह पकड़े हुए हो। मेरे साथ सप्त पद फेरे हुए हो। बाँह और चरण की लाज तो तुम निभाओ। तुम्हारी हो चुकी तो बस लायक रखो। दूसरों को बचाते हो तो मुझे भी बचाये रखो। जहां जाव वहां मुझे सेवा में साथ लेते चलो। अचल भक्ति में अमर जीवन अपने आप होता है।

इन ६६ या ७० गीतो में डाकोर की प्रति समाप्त होती है। इनमे दसों सनातन रूप दर्शाये गये हैं। यह अमर जीवन का दर्शन है। इसे तुलसीदास जी ने अपने ढंग से कहा है।

अब काशी की प्रति सामने आती है। इन गीतो पर नम्बर दिये गये हैं ७० से १०३ अर्थात् ३४ गीत। जैसे १ से ६६ तक के गीत अमर जीवन के गीत हैं और जैसे वे दस रूपों में प्रकट हैं वैसे ही ७० से १०३ तक मृत्यु पर विजय के गीत हैं और आठ विभागों मे विभक्त है। जैसे दस रूप वेद के अनुसार हैं वैसे ही अष्ट ऐश्वर्य भी। मृत्यु के आठ प्रकार

है । वे जब संग रहते हैं, तब उनके बल मीरा उतरती है पार । उनकी क्या ही मनोहर छवि है? उसकी कामना मीरा कैसे न करे? श्याम और उनके दिये हुए प्रसाद का मीरा को लोभ है। इस बात को मीरा ने बिलकुल त्यागा नहीं, सदा लोभी है।

पांचवां भाग ८५ वें से ८९ वें तक है। महिमा का प्रकरण है । बड़े अतिथि रूप से प्रियतम बड़े शान से राज मार्ग से जा रहे हैं। मीरा कहती है, मैं ठाटी पर आपने मोहन निकला आय। वह इतना बड़ा मैं इतनी मामूली । भरी सड़क पर कैसे बोलूं? परन्तु बोल ही उठी । भगवान ने बात सुधार ली। मन्द मन्द मुसकाय । अब तो मीरा का साहस और भी बढ़ा । माई रे म्हारे नैना बान पड़ी। अब तो हरि की महिमा देखती रहती है और उसका गान करती ही रहती है। और भी साहस बढ़ा। उतने बड़े पुरुष के साथ लगन हमारी श्याम सूं लागी। हरि से हो गया श्याम । नैना निरख सुख पाय। इसी को सामवेद में कहा है प्रेष्ठं वो अतिथि स्तुषे मित्र इव प्रियम अग्ने रथं न वेद्यं ।

छठवां भाग है ९० से ९४ तक। पाच गीतों में ईशित्व का विषय है। मीरा की तो हालत खराब है। प्यारा ऐसा अन्तर्ध्यान होता है मानो ईश्वर नाम का कोई है ही नहीं। इधर मीरा बीमार सी हो जाती है । विरह कलेजो खाय। क्यों तरसावे अन्तरजामी, आय मिलो दुख जाय। मीरा को रास्ते देखते ही समय जाता है । जैसे ज्ञानी इधर देखता है उधर देखता है कि कहीं व्याकुलता रोग की दवा मिल जाय। वह तो पन्ने उलटते ही रहता है उतने में मीरा के कान में मुरलिया बाजा जमना तीर। रोग भूल गया। अब तो सुन्दर व्याकुलता उठी है । श्याम कन्हैया श्याम कमरयां श्याम जमुन

को नीर; गद् गद् हो गयी। उसका प्यारा सब तरहसे उसका है।

परन्तु काल के वश सारी सृष्टि है। मीरा कहती है, जग सुहाग मिथ्या री सजनी हो वाही मिट जासी। यह असली मृत्यु का प्रसंग है ९५ से ९८ तक। म्हारो सावरो ब्रजवासी। ब्रज वास या काशीवास सब शब्दके दिखावे हैं। जो गया सो तो गया ही। परन्तु मीरा ने वरन किया था अविनाशी का। उसका विनाश कैसे ? तारा गिनती है परन्तु ज्योतिष मे क्या पड़ा है ? बड़े दर्दनाक शब्दों में कहती है। सजनी कब मिलश्या पिव म्हारा। निरखाँ म्हारो चाव घनेरो। श्याम का संदेश होता तो मीरा जीवन ज्योति बुझाती। परन्तु आत्म हत्या की आज्ञा नही है। ऊँचा चढ चढ पंथ निहारया मग जोता दिन राती। 'तद् विष्णोः परमं पदं, सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षु राततं'। अंत मे रोशनी मिलती है। म्हा लागा श्री चरणा री। भगवान के श्री चरणों की, उनके बताये धर्म की सेवा करो। यही मृत्यु को वश मे करने का उपाय है। साथ ही साथ मीरा और भगवान के परस्पर वशीकरण का मन्त्र है।

अब तो और सब आस छोडकर गिरधर प्यारे की आस है। आठवा अन्तिम भाग १००से१०३ तक है। अब तो मनस्ताप के लिए स्थान। नहीं जीवन की धारा सुन्दर बन गयी। उसके पुट मे शुद्ध विचार की धारा है। फिर भी कितने कष्टके बाद। गिनते गिनते घिस गयी रेखा अंगुरिया री सारी। आया ना री मुरारी। जितना यह कष्ट हुआ उतना ही मिलन का सुख हुआ। एक ही डर है। कहीं पलक मारते ही गायब न हो जाय। डरतो पलक ना लावा। यह तो कहने की बात है। म्हारा हिरदा बसा मुरारी। अब क्या शोक है क्या मोह है। मीरा का दर्शन अमर है।

सभी शास्त्रों में बारम्बार कहे गये हैं। इन पर विजय अष्ट ऐश्वय द्वारा होती है। यह वेदमत है। दोनों मिलकर हैं एक सौ तीन या एक सौ चार। गीतों में समूचे ज्ञान विज्ञान का सार आ गया है, परन्तु इतने रस में डूबा हुआ है कि जिन्हें केवल रस या सगीव का आनन्द चाहिए उन्हें समुद्र-तल के गंभीर रंग-युक्त ज्ञान-विज्ञान का केवल भान मिलेगा—सो भी यदि समुद्र की ओर देखें तब। अन्यथा लहरों के झाग और घुमाव-फिराव ही दीखेंगे। ज्ञान-विज्ञान उनके रस में अपना सिर नहीं उठा-वेगा। फिर भी श्यामल रंग की झलक-मात्र मिलती रहेगी।

पहला भाग है ७० से ७३ तक। कुलवधू के लिए पिया बिन होली खेलना भी अपमान है। परमेश्वर को भूल कर संसार की ठेला में आनन्द कैसा? वह तो निज का और परमेश्वर का अपमान है, नास्तिकता है। आस्तिक तो निशिदिन जगावेगा—जब तक प्रियतम अपने भक्त को दर्शन न दे। होली वास्तव में होती है प्यारे के साथ—दूसरा न कोई। इसी प्रकार मीरा होली नहीं मनाती। उसने में अन्धेर पर विजय होती है। प्रियतम प्रेयसी का मान रखते हैं। कितना कष्ट उठा कर आ पहुंचे हैं। अब तो होली का रंग देखते बनता है। रंगभरी रागभरी राग सू भरी री। होळी खेल्या श्याम संग रंग सू भरी री। परन्तु यह सब केवल चरणों का प्रताप है। कारण मीरा तो आदि से अन्त तक चरणों के ध्यान में थी। पिया कब आये कब गये? आये कि नहीं। वह तो परदेश में है न।

७४ वें से ७७ वें तक दूसरा प्रकरण है। यह है निंदा रूपी मृत्यु का। यहाँ श्याम की निंदा ही निंदा है। उसने परदेश

जाकर भेजा न एक संदेश। हम चितवाँ तुम चितवो ना हरि हियड़ो बड़ो कठोर। वैद्य क्या करेगा? वैद्य मरम ना जाना री म्हारो हियड़ो फड़का जाय। प्रभु दर्शन एक मात्र दवा है। अच्छा वह आवें या न आवें। मीरा उनके जिम्मर थोड़े हैं। सांवरी सूरत मन रे बसी। वे आवें तो आनन्द, न आवें तो भी नित नव प्रीति रही। भगवान के अवतार लेने पर हम बचें तब तो हमारी भक्ति की निन्दा है। उनकी और भक्ति की कीर्ति इसी मे है कि भक्त का प्रभु की स्मृतियों द्वारा उद्धार हो जाय। इन सब में कितना गूढ़ तत्व भरा है सो तो दीख ही रहा है।

तीसरा भाग है ७८ वें से ८१ वें गीत तक। नन्दकुमार आकर नेह लागाकार, मुरली धुन सुनाकर, मीरा को सबसे छुडाकर भरे यौवन मे अन्तर्ध्यान हो जाना है। शोक का वज्रपात होता है। अब क्या उपाय हो? धैर्य कैसे बंधे? चौंक उठा सुपना लख सजनी। संतोष है कि पीव जान्या म्हारी बात। मीरा पीडा सोई जाना मरण जीवन जिन हाथ। यों ही मानो स्वप्न मे नई रोशनी मिल जाती है। यह भगवान की दया है। भगवत् प्राप्ति की सनातन रीति है। यह नींद का स्वप्न नहीं है। उसमे सत्य दीख जाता है कभी कभी। परन्तु यहां उस स्वप्न की बात है जो कवि देखा करते हैं और जिसके द्वारा तुलसीदास जी के शब्दों मे गयी हुई वस्तु वापस मिलती है। जिसमे सभी सत्य दीखता है। यह मुनियों का स्वप्न है। चौथा भाग है ८२ से ८५ वें गीत तक। लोग कहते हैं कि जीव को निष्काम होना चाहिये। परन्तु गिरधरलाल का खाना देखो तो देखते ही देखते रह जाओ, मीरा जब सामने थाल रखती है। और वे नाच के बड़े शौकीन हैं—मीरा जब नाचती है तब। परन्तु श्याम बिना जग खारा लगता है। उसमे हानि ही हानि

दस रूपों और बारह वर्णों के सम्बन्ध में कुछ और बताना है। रूप एक है। उसे प्रकाश के लिए कवियोंने दस रूपोंमें देखा है, जैसे आकाश एक है, परन्तु दर्शन के लिये हम उसके बारह भाग कर लेते हैं। इसमें मनुष्य का हाथ नहीं है। अर्थात मनुष्य की मनगढ़ंत कल्पना मात्र नहीं है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि ने आपस में निपटारा करके आकाश के बारह भाग कर लिये हैं। इसी के अनुसार वर्ष के बारह महीने होते हैं और जगत व्यवहार में बारह भाव होते हैं। दश में पौरुष के दस रूप और शेष दो में उसका हिसाब अर्थात् लेना देना, जोड़-बाकी, आय-व्यय, एकता और सिद्धि? दश रूपों को अच्छी तरह समझने के लिए एक सरल उपाय किया जाय। सभ्य जीवन में सब से पहले कुछ जानने की इच्छा होती है। हम जो जानते हैं, सो तो जानते हैं, परन्तु उसके अलावे बहुत जानने की इच्छा होती है। यदि सच्ची बात को सच्ची रीति से जानने का इच्छा करे तो वह हुई शुभेच्छा, सुरुचि। इसके और भी बहुतसे न म हैं। यदि हम सभी चोजोंको सार रहित समझ कर उनसे मुक्त होना चाहें तो हम यही कहेंगे कि इसमें क्या पड़ा है, उसमें क्या पड़ा है यह भी नहीं, वह भी नहीं, नेतिनेति। और यों कहते-कहते अन्त में कहने के लिए कुछ भी नहीं रह जायगा। मौन रह कर शान्ति भोगते रहें।

परन्तु यदि हमें जगत के व्यापार में रहना है और उसके विषय में कुछ जानना है तब तो अकेले बैठे बैठे काम नहीं चलेगा। पहले पहल स्थूल दृष्टि से देखने में आयेगा कि हमारी ही यहां नहीं चलती। हम मनमानी न कर सकते, न चला सकते। हमारा भी कोई गुरु कहीं बैठा है। उसी को हम ईश्वर कहते हैं। एक तो हम देखते हैं कि हर चीज में नियम की बड़ी पाबन्दी है। घास तक इतनी सुन्दर उगती है—बड़े बड़े नियमों के अनुसार। आम के गाछ में जामुन नहीं लगते। बनमानुषी के गर्भ से मनुष्य नहीं पैदा होते। और असीम व्योम में अगणित-पिण्ड चक्कर काट रहे हैं। पृथ्वी सूर्य पर नहीं जा गिरती। और जो चीजें एक दूसरे पर गिरती हैं वे भी किसी और भी गूढ़ नियम या निर्णय के अनुसार। इससे हमें यह पता लगा कि सारे जगत में कोई बड़ा भारी तत्व काम कर रहा है। उसे हाथ-पैरवाला समझना तो अपने अनुसार बना लेना है। उसे जड़ समझना भी हमारी जड़ता है। कारण इतनी सुन्दर और दृढ़ व्यवस्था जो करोड़ों अरबों वर्षों क्या, अनादि काल से चली आती है वह किसी पत्थर या गैस या विद्युत या अन्य किसी जड़ शक्ति की उपज और सङ्गठन और परिचालन का फल नहीं है। हमारी बुद्धि के विपरीत नहीं है। उसको मारने वाली या भ्रष्ट करने वाली शक्ति नहीं है। उससे परे अवश्य है। जिसे हम चाल कहते हैं वह उसकी बड़ी कृपा है। उसने सभी योनियों में मनुष्य जाति को अच्छी बुद्धि दे रखी है। उससे हम ठीक तौर से काम लें तो मजे में हमारा काम चल जाता है, और चाहे लीला के लिए हो या अन्य कोई भी कारण हों, हमें छूट भी दे दी गयी

है कि कुछ देर तक हम धाहे जिधर चले जायं। अर्थात् हम ठीक रास्ते पर चलें या गलती रास्ते पर चलें, यह हमारी इच्छा। यह अधिकार क्यों दिया गया? इससे तो अनर्थ ही हुआ है। परन्तु इस बिना, फिर बुद्धि किस काम की? मानवी बुद्धि की सृष्टि क्यों हुई यह तो ईश्वर जाने। हुई तो इसमें शक्ति भी है। अत हम बुद्धिमान हैं। अत हम ठीक कर सकते हैं और भूल भी कर सकते हैं। अत भूले भटके हुए हम दौड़े दौड़े सत्य की ओर वापस लौट सकते हैं या अड़ सकते हैं या गफलत कर सकते हैं या जिद करके भूल की ओर बढ़ते ही जा सकते हैं। हमारी बुद्धि और ईश्वर की बुद्धि मे यही भेद है। ईश्वर की बुद्धि सत्य को छोड़ती नहीं है। अड़ जाने का सवाल नहीं है। गफलत या त्रुटि है नहीं। इसी बुद्धि के अनुसार हम अपनी बुद्धि को कर लें तो हमारी बुद्धि भी ईश्वर कहलाती है। नहीं तो राजसी, तामसी, राक्षसी, दानवी इत्यादि नाना प्रकार और नाना नामों वाली हो जाती है। हमारा जीवन जबतक पवित्र नहीं है तबतक हमारी बुद्धि की निर्मलता का भी भरोसा नहीं। मनुष्यमात्र ईमानदार होते हुए भी भ्रम में पड़ सकता है। इसलिए किसी मनुष्य शरीरधारी को ठेका नहीं है कि वह जो कुछ कह दे उसे सत्य होना ही पड़ेगा। अर्थात् सत्य अपनी सत्यता छोड़ कर उसके भ्रम को सत्य बनाने में लग जायगा। सच्ची बात तो उसके ठीक विपरीत है। सत्य अपने स्थान पर डटा रहता है और मानवी बुद्धि उसका अनुसन्धान पा सकती है किसी हद तक। नतीजा यह निकला कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्यों के अनुभवों से लाभ उठाना पड़ता है—यदि वह सत्य को

जानना चाहे। संसार मे ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है जो दूसरों को भ्रम मे डालते रहते है---जानबूझ कर हो या अनजान में। फिर भी साधारण बुद्धिमान मनुष्य को सच्चे रास्ते पर चलने वालों की पहचान हो जाती हे और बहुत दिनों तक बहुत मनुष्यो द्वारा परीक्षा हो लेने के बाद फल देख-देख कर परिचय मिल जाता है कि किन वचनों मे सत्य है और किनमे नहीं। सत्य पाने वालों को ऋषि, संत या महात्मा कहा जाता है। जो जगत के साधारण व्यवहार की सच्ची बातों को जानते है उन्हे हम विद्वान् या अनुभवी वा वैज्ञानिक वा मेदिनो-पंडित इत्यादि कहते हैं। जिस सत्य से हमें सदा और सर्वत्र मतलब है, जिस सत्य से जीवनधारा बराबर शुद्ध और उज्वल रहती है, जिसमे मृत्यु का भय जाता रहता है उसे हम कहते है ज्ञान। फिर रस का बडा भारी स्थान है। भरते शास्त्र के लिए वह अन्तिम चन्द्रोदय है। सभ्य समाज उस पर टिका हुआ है। भक्ति के पीछे हम सहर्ष जीते और मरते हैं। हजारो ऋषियो के सहयोग से सर्वांङ्ग सुन्दर ज्ञान विज्ञान भक्ति समापन्न ग्रन्थ बन गया। उसका नाम है वेद। जीवन के चार प्रधान दृष्टिकोण है। इसलिए वेद हो गये चार। परन्तु रास्ते मुख्यत: तीन है। उन तीनो रास्तों की कठिनाइया देखिये। एक रास्ता है विज्ञान का। वह सदा आगे बढ़ता रहता है। उसमें जो रुका सो गया। उसका नाम पड गया कर्मकाड का मार्ग। दूसरा रास्ता है तत्व ज्ञान का। उसमे जो जितना स्थिर रह सके जितना हृदय मे पहुच सके उतना ही ठीक है। इस रास्ते का नाम पड गया वेदात ज्ञान का मार्ग। तीसरा रास्ता वह है, जिसके द्वारा जीवन मे अनुपम आनन्द आ जाय।

हजारों प्रकारों से शुद्ध दृष्टि द्वारा मनुष्य को रिझाना पड़ता है। इसका नाम पड़ गया उपासना का मार्ग। एक रास्ते पर बढ़ते चलो एक स्थान पर डटे रहो। हजारों धाराओं में बहते रहो। अच्छी रही भगवान की लीला! उसे भली भाँति संतों ने निबाहा है। कारण, देखने में ये तीन रास्ते इतने भिन्न होते हुए भी भीतरी बातों में एक है। इन तीन रास्तों को समान निभाने वाले परम गुरु हैं। श्री राम और श्री कृष्ण ने वैसा कर दिखाया। इसलिए उन्हें चन्द्र कहते है। तीन मार्गों के सूत्र दे गये। उनको हम आज के अनुकूल समझ कर उनका प्रयोग कर सकते है। हिन्दी में भी कई कवि ऐसे हो गये हैं जिनके द्वारा तीनों मार्गों के दर्शन हमें मिल जाते हैं। यथा तुलसी, सूर, मीरा, बिहारी, विद्यापति, और कबीर। वे हिन्दी के है तो ठीक, न हैं तो ठीक। उन्हें हिन्दी गोद में ले लेती है। उनके वाक्य आचरण के लिए हैं। यह एक कारण है कि उन्हें पद या चरण कहते हैं। उन्हीं ग्रन्थों में कहा गया है कि मुनियों के और गुरुओं के सभी के चरण धोवो। अर्थात् महाकाल की गति ऐसी है कि सभी ग्रन्थों में बाहर की धूल आ लगती है। उसको प्रक्षेप कहते हैं। पहले उन्हें धो डालना चाहिए। फिर कई टीकाओं का संसर्ग बैठ जाता है, जो आज के अनुकूल नहीं। उन्हें भी धो मांजकर मूल वाक्यों के असली रूप को प्रकट कर लेना है। फिर मूल वाक्यों के प्रयोग में भी आज कल अनुकूल सतर्कता रखनी पड़ती है। जैसे मूल वाक्य में कहा है, 'अच्छे राजा की भक्ति करो'। आज उसका अर्थ होगा कि देश के संविधान की भक्ति करो। अर्थात् शब्दों पर अधिक जोर न देकर सारांश पर ध्यान देना चाहिए। तब

हम देख सके गे कि वे मूल वाक्य मृतप्राय नहीं हैं। उनमे वह व्यवस्था, बल और शांति है जिसकी खोज मे हम हैं। तभी देवों और संत वाणियों का उद्धार होता है, साथ ही साथ हमारा भी। हमे जीती जागती वीर वाणी मिलती है। सभ्य समाज या मनुष्य के लिए यह पहला वर्ण है। ईश्वर का पहला रूप है। यह नित्य सत्य है। यह नित्य की खोज और जिम्मेदारी है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि सभी को सभी ग्रन्थ पढने की शक्ति या आवश्यकता है। हर मनुष्य का कर्त्तव्य है कि नित्य अपने बूते के अनुसार सत्यवाणी को अपनावे। नित्य अच्छे मनुष्यो की उसी काम मे सहायता करे। उसका फल यह होगा कि सब की कमाई एक स्थान मे ``। जायगी। और सबकी सम्पत्ति हो जायगी, जिसके जितने काम मे आ जाय। देश की शोभा बढेगी। सत्य का प्रचार बढेगा। पढने का सुन्दर नियम है कि जब तक आनन्द पावे पढे जाँय। जब कष्ट मालूम होने लगे तब समझ लेना चाहिए कि पेट भर चुका। अब अजीर्ण होने वाला है। आज जब नित्य गगास्नान और मन्दिर में नामश्रवण सब मनुष्यों को नहीं मिलते तब हमारे समाचार पत्र नित्य थोडा-सा धर्म सत्य का परिवेशन किया करे तो वह बडा कल्याणकारी होगा।

—— * ——

वाणिज्ये वसते लक्ष्मी । वाणी में वसते हैं प्राण। लक्ष्मी और सरस्वती का विरोध कबतक चलेगा मुझे मालूम नहीं। परन्तु इतना तो दीख रहा है कि एक का पूर्णतया अनादर करने से दोनों ही दूर हटती हैं। आज की दुनिया में लक्ष्मीहीन मनुष्य का विद्या पढ़ना ही कठिन होता है देश देशान्तरों का अनुभव प्राप्त करना तो और भी कठिन है । विद्या को अपने अधीन बनाए रखना और उसे चमकाते रहना कठिन से कठिन है, कारण यह लक्ष्मी का युग है। परन्तु जो मनुष्य धन कमा लेते हैं और साथ ही साथ विद्या से कुछ भी सम्पर्क नहीं रखते उनको भी आज की स्थिति याद रखते हुए नाना प्रकारके कष्ट मिलते हैं । वे असली प्राण से वंचित होते जाते हैं और अन्त तक उनके लिए और समाज तथा देश के लिए अन्धकार ही अन्धकार है, कारण यह लक्ष्मी के साथ साथ सरस्वती का युग है।

सभी श्रेष्ठ कवियों ने वाणी की वन्दना प्रथम रखी है । आज वाणी के करोडों रूप हैं। ग्रन्थों का अथाह समुद्र है। जितने मनुष्य भारतमें हैं उन सभीके लिए अनुकूल खुराक मौजूद है । लाईब्रेरी मे चरिये जितना चरना हो। इस विषय में सम्भवत भारत अन्य देशों से अधिक भाग्यवान है । कारण यहाँ अन्य देशों की विख्यात पुस्तकें पहुच जाती हैं। साथ ही साथ संस्कृत, पाली और नाना भाषाओं की निधियाँ हैं। हमारी

अज्ञानता के कारण हमारे अनमोल ग्रन्थ नष्ट होते जा रहे हैं। यदि कोई मनुष्य एक अच्छे ग्रन्थको छपाकर उसकी उद्धार करता है तो प्राय समूचे समाज की अवहेलनापाता है। अत ६६ प्रतिशत अच्छे ग्रन्थ सदा के लिए लुप्त हुए जा रहे हैं। वाणीकी जो पूजा हुआ करतो है उसे देख सुनकर वाणी का कलेजा फटता होगा। सत्य की हार सदा के लिए नहीं होती। विद्या की चर्चा को भूलकर देख लिया गया। अधविश्वास आजमा लिया गया। आपस मे लाखो की संख्या मे गले काटकर इस प्रकार के बलिदान की शोभा भी हदतक पहुच चुकी है। भारत की सभ्यता को दिल्लगी बहुधा अङ्गरेजी पत्रों मे अभी भी निकलती रहती है। परदेश से आए हुए या इसी देश मे पैदा हुए तुच्छ साहित्य का बाजार गरम है। फिर भी धर्मप्राण नर-नारियो की आत्मा से वह हुकार निकल रहा है, जिसका बल शीघ्र ही ससार के कोने कोने मे गुजायमान होकर रहेगा।

वह बल किस बल पर उमड उठेगा? भारत की जनता अपनी इष्ट वाणी को हृदय मे रखेगी। कोई उसे परदेशी भाषाओं मे सुनेगे। हमतो उसका स्वागत करेगे। फिर भी हिन्दी भाषी, जो करोडो की सख्यामे हैं 'वे अपनेको' धन्य धन्य अति धन्य मानेगे कि हिन्दी मे उच्चतम कोटि का साहित्य है। उस साहित्य मे उच्चतम कोटि का मन्त्र है। उनका वेद से साक्षात् सम्बन्ध है। वेद के अर्थ को खोलने का परम पवित्र श्रेय हिंदी को मिल सकता है। थोडे से परिश्रम की आवश्यकता है। आज हिंदी राष्ट्रभाषा बनी है तो बहुतेरे आक्षेपकारियों का कहना है कि भिखारिन का भाग्य खुला, परन्तु उसे सिर उठाने न देगे।

भगवान की माया देखिये कि उसी हिन्दी में वे अनमोल निधियां हैं जिनके लिए संसार भर से रसिकगण भाव विह्वल होकर भ्रमरों की तरह कतार की कतार में आवें तो कोई आश्चर्य नहीं। भिखारिन की झोली में अनमोल रत्न छिपे हुए हैं।

रामायण के रास्ते में पहला तीर्थ है वाणी। वाणी का स्वरूप रहेगा हमारे लिए रामचरितमानस। वहींसे दस दिशाओं में रास्ते निकले हैं। हमारे समाचार पत्र, प्रकाशक और हमारे पूज्य उपदेशक उनके सर कराते रहेंगे, यह हम साधारण मनुष्यों की आशा है। किसी रास्ते से पुराना आर्यधन रामायण में आता है। किसी रास्ते से संतवाणियों का परस्पर लेन देन चलता है। और किसी रास्ते से हम पर धन बरसता है। इस व्यापार का क्या ठिकाना है? रामायण वेद की ध्वनि है तो मीरापदावली उसका उपनिषद है। उपनिषद किसे कहते हैं, जो ग्रन्थ जीवन और मरण के रहस्य की सुव्यवस्थित झांकी दे। मीरा ने केवल वह झांकी ही नहीं दी, वरन अत्यन्त गाढे सरल गीतिमय शब्दों में समस्त भावों और रसों का सार दे दिया। अत न केवल उपनिषद् वरन बृहत्साम भी उसमें है। बृहत्साम का आरम्भ है त्वाम् इत् हि हवामहे। मैं तो केवल अपने को तुम पर अर्पण करता हूं। मीरा का आरंभ है मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई। आदि से अन्त तक मीरा बृहत्साम की सुन्दरतम व्याख्या है। मीरा मर्यादा की रक्षा करती है और अनन्त प्रेम का प्रकाश करती है। अत रामकृष्ण मायामनुष्य उसकी बांह पकड़ते हैं। असलमें वह विश्व प्रेम की वाणी है। सीता के हृदय की बात मीरा कहती है। यों

रामायण के रास्ते में मीरा की ध्वनि बड़ी मीठी लगती है। राम ने सती को छकाया, सूर्पणखा को हराया, अहल्या को जिलाया, नाना स्त्रियों को भक्ति का मार्ग दिखाया, मीता को स्फटिक शिलाकी शुद्ध प्रतिष्ठा पर बैठाया, सीता से मोहित भी हुए, उनका सम्मान किया, उनके लिए काम्यकर्म के पीछे दौड़े, उनके लिए रोये, गाये, उनकी खोज में जमीन आसमान एक किया, पति स्वभाव के अनुसार अग्नि-परीक्षा ली, जिसके लिए वाल्मीकि ने सीता के मुख से कुछ खरी बातें भी सुनीं, फिर सीता को वन में भी भेज दिया। सीता के मन की बातें पूर्णतया कहा मिलती हैं ? उस बिना तो स्त्रियोंका पक्ष एक प्रकार से मौन ही रहा। स्त्रियों के मुख मे भी वाणी है। उसी के लिए "मीरा पैदा कीन्हा हो।" हिमालय से कन्या कुमारी तक और उससे भी परे लङ्का की अशोकवाटिका में यहा तक कि जहा जहां राम कथाका युद्ध गाया जाता है वहा वहाँ मीरा का प्रेम भी। मिथिला की बेटी मारवाड़ियोंकी माँ हुई। परन्तु दोनों जगत जननी। दोनो पर योद्धाओं के कुल मे संस्कृति-रक्षा का भार रहा। लवकुश को वाल्मीकि जी ने रामायण का गान सिखाया—वेदार्थ के प्रतिपादन के लिए, सीता के महत् चरित्र के दर्शन के लिए और रावणवध वर्णन के लिए। परन्तु लवकुश को कण्ठ कहाँ से मिले ? बुद्धि धैर्य, और सकल गुणोंको प्रतिभा और रसोंके स्रोत ? सब सीता माता से। समझदार मुनिगणोने सीतापुत्रों से रामायण गान सुनकर अठारह अर्थ दिए। वाल्मीकि रामायण मे इन अठारह अर्थों का वर्णन बड़े विचित्र शब्दों मे दिया हुआ है। पाठकों को खूब छकानेवाला है। मीरा

ने उन अठारह पदार्थों का सार अठारह मार्गों में हृदय की अनुभूति रूपसे दिया है। हमारे शास्त्रों की रासलीला अपरम्पार है। रामायण का अन्तिम रस मीरा में मिलता है। रामायण ऐश्वर्य का ग्रन्थ है। रामायणी राम की मर्यादा से प्रभावित होकर यह मानने लगते हैं कि राम ऊँचा, हम नीचे। रामके नियम और हमारे नियम और। इस भेद-भावको मिटाकर परस्पर धारण पालनका गिरिधर गोपाल मीरा संयोग हमारे हृदय में श्यामको बैठा देता है। उसको चाहे राम कहिये, चाहे कृष्ण। हम रामधारी बनते हैं। हम नन्दलालको अपने नयनों में बसाते हैं। घर-घरमें गीता और हिंदी ग्रन्थोंका श्रवण और समझानेके साथ वास जिस दिन होगा उस दिन सहजहीमें ईशावास्यम् इदं सर्वम्। तभी वाणी सार्थक होती है।

वाणी प्रथम है। वाणी ईश्वर युक्त है। वाणी ईश्वर है। महात्माओं की दिव्य दृष्टि का यही मूल सिद्धांत है। तुलसी दासजीको वाणी अनेक प्रकार से मिली। वेद, नाना पुराण, धर्मशास्त्र, वाल्मीकि, कालिदास, इत्यादि। हमें वाणी के रास्ते में तुलसीकृत रामायण की पुस्तक मिल गयी है। अन्य पुस्तकें साथ हैं। वाणी तो मिल गई, अब अर्थकी चिंता है। अर्थ ऐसा होना चाहिए जो विनायक हो। आगे बढ़ावे सो अर्थ, नहीं तो अनर्थ। जिन पुस्तकों ने वाणी की पदवी प्राप्त की है वे अपना अर्थ अपने आप खोलती हैं। यही वाणी अर्थ का मेल है। फिर भी महाकाल योग-भ्रष्ट करने वाला महान् है। एक तो वाणी का विषय गूढ़ है। दूसरा उसको किसी न किसी प्रकारसे सुन्दर रूप देना पड़ता है, नहीं तो ग्रन्थ रसहीन हो जाता है और साधारण मनुष्य का उसमें मन नहीं लगता। एक और अड़चन सामने उपस्थित होती है। जीवन का रूपक समय पाकर बदलते रहता है। इसलिए कल का शृंगार आज का भार हो जाता है। जो अलङ्कार कल अर्थ को स्पष्ट करते थे वे आज अर्थ को ढक देते हैं और विकृत तक कर देते हैं। साधारण बुद्धि के परे की वस्तु तो रूपक द्वारा ही समझाई जा सकती है। यों रूपकों बिना काम भी नहीं चलता और रूपकों द्वारा काम बिगड़ने भी लगता है। ईश्वर ने सृष्टि को रूपों से भर रखा है और स्वयं उन्हीं रूपोंमें छिपा बैठा है। वही हालत अर्थोंका है।

कागज काला, हरफ़ मसाला, क्या भारी गत पाई।
इची रौनक क्यों रे फलसी, तूही याद भुलाई।

ये मार्मिक शब्द हैं। मर्मिया साधुओं के हैं जो आचार्य क्षिति मोहन सेन द्वारा आचार्य सुनीति कुमार चाटुर्ज्या को तथा उनकी कृपा द्वारा मुझे प्राप्त हुए। यह एक दृष्टांत भी है। यों परम्परा से एक मनुष्य से दूसरे-को अर्थ के वाक्य प्राप्त होते रहते हैं, तभी तो अर्थ जीवित जागरित रहता है, नहीं तो अमृत अर्थ भी मृतवत् हो जाता है। महाकालकी शक्ति है, जो अमृत को भी मृतकी तरह आंखों से ओझल कर देती है। उसी की जब अनुकम्पा होती है तब वह वस्तुओं को लौटा देती है। तब हम उसे महादेव कहते हैं। नवजात अर्थ उन्हीं का पुत्र समझिए। अब विनायक है। अलग अलग मूर्तियां भाव समझाने के लिए हैं, बिगाड़ने के लिए नहीं। मूर्तियों को ठीक न समझने के कारण हमारी बुद्धि के टुकड़े टुकड़े हो गये हैं। इसलिए कोई मनुष्य तो रास्ते के प्रारम्भ में ही, कोई मध्य में, कोई अन्त में किसी भ्रम या किसी भेद के लड्ड में पड जाते हैं। मूर्तियों ने ही अकेले क्या दोष किया है? मूर्ति विरोधियों को वाक्यों या कर्मों या भक्तिभाव के पथ पर भी वही गुमराही होती है। यह और कुछ नहीं है। मायाकी प्रबलता है। द्वन्द्व का प्रभाव है। इसीलिए महाकाव्य बहुधा युद्ध के रूपक को लेकर प्रकट होते हैं। जैसे रामायणमें राम का जन्म धर्म युद्ध के हेतु से होता है। राम रावण युद्ध करते हैं। उसके अन्तमें विश्राम भी योद्धाका विश्राम है, अर्थात् विजय के बाद धर्म राज का स्थापन। राम की महाकथा में रामनहूम मासमान हैं। परन्तु विभूति के

लिए रामः शस्त्र भृता महं। शस्त्र रण संभार सामने है। परमब्रह्म अन्तर्गत हैं। दूसरे महावाक्य द्वन्द्व को प्रेम से मिटाते हैं। इनका रूपक शृङ्गार रस को लिये हुए होता है। गत शत वर्षों में विदेशी-स्वदेशी मनुष्यों ने प्रेम-साहित्य के गूढ़ अर्थों की ओर आखें मूंद कर और इसके बाहरी वर्णनों को अश्लील बताकर इस कीर्त्तन शास्त्र को प्राय: रसातल में पहुचा दिया था। परन्तु कई परमभक्तों की दृढ़ता के फलस्वरूप इसके बुरे दिन प्राय चले गये। आज जनता तैयार है—मीरा, बिहारी, विद्यापति के अन्तरङ्ग भावों को सुनने के लिए। बगला कीर्त्तन-साहित्य इस पथ पर राजवाटिका है। युद्ध और प्रेम के रूपक के अलावे अन्य कई प्रकार के रूपक हैं, जिनपर बड़े साहित्य का अवलम्बन होता है। वे सब वेद में पाये जाते हैं, उनमें से दो का उल्लेख कर दूं। एक है वीर्य्यका इतिहास। उस रूपक में वात्सल्य भाव द्वारा परमतत्व की व्याख्या होती है। उस रूपक को सूरदास ने श्रीमद्भागवतके सहारे अपनाया। इस ससारमे भगवान बीज-प्रद पिता हैं। वह अनेक नहीं, एक हैं। उनकी संतान मे मोह द्वारा द्वन्द्व के क्लेश उत्पन्न होते हैं। अत उन्हीं का उज्वल अंश परम वीर भक्तों और नाना अवतारों के रूप में प्रकट होता है और जगत् की रक्षा करता है। यह वीर्य का प्रभाव है। वीरता का इतिहास है। जिसके सिर पर मृत्यु नाच रही है उसके लिए यही परम उपयोगी है, कारण इसी में अमर जीवन की आशा है। युद्ध, प्रेम और वात्सल्य परम्परा के रूप के अलावे एक रूपक है—अन्तर्ज्योति का। उसकी पद्धति बिलकुल उल्टी है। उसमें पहले हम सत्र कुछ होते हैं, फिर कुछ देखते सुनते हैं।

समूचा अभिनय और रामकथा हमारे अन्दर होती है। बाहर का व्यापार चलता अवश्य है, पर उसका भीतर का हिसाब पहले होता है, फिर साथ चलता है। वाणी और अर्थ की एकता सभी बड़े ग्रन्थकार मानते हैं। परन्तु वे वाणी पहले और अर्थ को पीछे याद करते हैं। कबीर जैसे अन्तरङ्गी अन्तर्ज्योति अर्थको पहले और शब्दको पीछे वर्णित करते हैं। इसलिये पर-ब्रह्मके महत्‌यशसे संलग्न हैं। इनके सामने राम-कथा, कृष्ण-कथा सभी कथाएँ आती हैं और हवा हो जाती हैं। केवल असली यश ठहरता है। इससे राम की असली मर्यादा बनी रह जाती है। तुलसी दास जी ने जिसका सती के और कामभुशुंडीजी के प्रसंग में वर्णन किया वही सत्य कबीर में पूर्ण प्रकाश के साथ चमक उठता है। रामायणी चाहे रामकी बड़ी कथा में बड़े मस्त रहें, परन्तु कबीर तो सुठे आम रामको त्याग कर रामकी परम आत्मा को अन्तर्ज्योति में अमर रूप से पाते हैं। राम का यश किसी कथा विशेष के ऊपर निर्भर नहीं करता। वह सदा सर्वदा सर्वत्र साथ है। तभी राम पुरुषोत्तम सिद्ध होते हैं। नहीं तो वे कितने भी बड़े शुद्ध और सुन्दर पुरुष क्यों न हों, परपुरुष ही रह जाते हैं। केवल रामायण के द्वारा भी आत्मन्वी जीव राम को आत्म पुरुष रूप में पा सकता है अवश्य। परन्तु रामायणके साथ अन्य महावाक्योंका यदि अनु-शीलन हो तो ऐश्वर्यदर्शनमें आनन्द और सुगमताकी सीमा नहीं रहती। जो परस्पर विरोध मानते हैं वे सम्भवतः द्वन्द्व का स्वागत करते हैं। एक प्रश्न उठता है कि साधारण जीवन की भित्ति पर जो साहित्य उत्पन्न होता है और जो धर्म से प्रकाश

रूप में कोई संबंध नहीं रखता (जो आजकल सबसे अधिक प्रचारित हो रहा है) उसका क्या पद है ? उसमें यदि स्थायी गुण होता है तब वही गुण साधारण जीवन वर्णन को असाधारण भाव और रसमें परिणत करता है। भाव और रस शुद्ध हृदय का पता लगाने के रास्ते होते हैं। यदि कोई रचना मैले भाव पैदा करती है तब वह म्लेच्छ साहित्य है। जिसकी जैसी इच्छा, उसको वैसी वाणी। मंथरा को वैसी ही सरस्वती मिलती है, परन्तु जिस वाणी में शुद्ध सत्य है उससे राम दूर नहीं हैं।

——::——

दासजी के कथनानुसार चींटियां भी बेड़ा पार कर सकती हैं। इस सेतु में संसार भर की सुन्दर उक्तियों की कड़ियां जुड़ गयी हैं। उसके रास्ते को परिष्कृत रखने और पता देने के लिए छापेखानेकी महान शक्ति महावीरका अवतार हो रहा है। उस रास्ते को बताने के लिए जनता के हृदय में श्रद्धा और विश्वास भवानी शङ्कर की तरह घर बनाये हुए हैं। बड़े आश्चर्य की बात होती यदि आजकी दुरवस्थाको देखकर सभी देव मैदान छोड़कर भाग जाते। देवता हैं, अन्त तक भक्तों के हृदय में बसते हैं, वहीं से ज्योति और शक्ति जनता में फैलती है। भक्ति का वास कहां है, यह कहना कठिन है। कारण भक्ति का जन्म बड़े गुप्त रूप से होता है और सब प्रकार के क्षेत्रों में होता है। करोड़ों कर्मी हैं, करोड़ों स्त्रियां हैं। उन्हें तो भक्ति रस द्वारा जीवन में अनुपम आनन्द आ जावेगा। मेरा थोड़ा सा अनुभव मुझे बताता है कि वे जिस लगन से धार्मिक उक्तियों का मनन करते हैं उसके सामने अधिक पढ़े लिखों की हार है।

एक उदाहरण लीजिए। बड़े से बड़े विदेशी विद्वान् अपनी अनुसन्धान शक्ति और प्रभाव-विस्तार तथा अध्ययन से, हमें चमत्कृत कर देते हैं। परन्तु अटूट श्रद्धा के न होने के कारण वे हमारे *गुरुपदों पर बैठी हुई मल का ही अधिकतर अनुसंधान* कर पाते हैं। न मैल को धो सकते हैं, न असली तत्त्वको स्वयं पाते हैं, न दूसरों तक पहुंचा सकते हैं। करोड़ोंकी हमारी जनता विदेशी भाषा, विदेशी भावों पर कहांतक अपना जीवन-निर्माण कर सकेगी? नकल-नवीसी से कभी कोई देश बड़ा हुआ है? हमारे यहां भी रत्नों का भंडार जब है तब हम उसे धो मांजकर

इसके अर्थ से लाभ क्यों न उठावें ? हमारे रत्नों का मोल यदि विदेशियों किम्वा उनके मानसपुत्र भारतीयों द्वारा हुआ होता तब तो उनमें से दो-चार तो हमारे हृदय के गुरु बनते ! इन सबने हमें भाग्य के ऊपर छोड़ रखा है। हमारे भाग्य की क्या ? हमारे मनुष्यत्व की आज परीक्षा है। आज तोड़-फोड़ करने वालों की कमी नहीं है। थोड़ी बुद्धि, थोड़ा बल और जनता की नींद, बस इतने से उनका काम चल जाता है। तमाशा देखने वालोंकी भी कमी नहीं है। खेलकूद नाच सिनेमा इत्यादि, क्लबों में और घरों में ब्रिज, क्रासवर्ड पजल इत्यादि बारहों महीने तीसों दिन लगे हुए हैं। अधिक बारीक बुद्धि वाले तमाशबीन साहित्य का भी तमाशा देखते हैं। रामकथा इत्यादि को कथा रूपमें लेते हैं। वाह-वाह या धिक्‌धिक् किया, कथा अन्त हुई और पुस्तक बँध गयी, पाठक, श्रोता, दर्शक अपने धंधेको ओर लौट गये। जैसे फुटबालकी भीड़का स्वास्थ्यसे सरोकार कम रहता है वैसे ही कथाको बाहरी कथा समझने वाले उसे अपने बाहर छोड़ते रहते हैं। इसलिए वेदमें बड़ा जोर दिया गया है कि हे भक्त, तुम अग्नि बनो और कथाको पी जाओ। यही कारण है कि तुलसी द्वारा प्रदत्त वेदके अर्थ रूपी महान् अन्न को पीने की आवश्यकता है। और वेद का स्मरण जब पान रूप से होगा तभी तुलसीदासजी गोस्वामी के वेदसार गर्भित वाक्यों के भी स्मरण मात्र से सब मंगलों की सिद्धि होगी।

—:—

वाणी सब दिशाओं से आती है और सब दिशाओं में फैलती है। जैसे ऋषियों और सतोंकी वाणी ऊपर से आती है। साधारण अनुभव की बातें इधर उधर चारों ओर से आती हैं। गन्दा साहित्य नीचे से सिर उठाता है। अर्थ सब दिशाओं से आता है और वाणी के साथ हो लेता है। सभी प्रकार के लोग सभी प्रकार के अर्थ लगाते हैं। कभी कभी अर्थके कारण वाणी का बल बढ़ता है। जैसे मल्लिनाथ की टीका के कारण कालिदास के शब्दों मे बहुत फैलाव हुआ। किसी किसी क्षेत्र में दिये हुए अर्थ के कारण वाणी की दुर्दशा होती गयी। ऐसा हुआ भी तो किसके साथ? वाणी मे सर्वोत्तम वाणी वेद वाणी के साथ। इसलिए वेद की रक्षा के लिए अन्य महात्माओं और लेखकों ने जो कुछ सेवाएं की सो तो की ही हमारे लिए भी सबसे बड़े महत्वका काम है। हिन्दी के कमसे कम छ कवियोंने वेदके अर्थ पर सुन्दर प्रकाश डाला है। इस कारण वे धन्य हैं और हम भी धन्य हैं। उन ग्रन्थों मे रामायण ग्रन्थ प्रधान है; सबसे अधिक प्रचलित है। अत रामायण के रास्ते मे उन सबके महत्व का स्थान है, कारण सबके सब एक परम अर्थ को लिए हुए हैं। रामायण की कथा और नीति आज भी हिन्दी भाषी भारत की गली गलीमे प्रचलित है और जानी हुई है। हमें आज उनके उस अर्थ से काम है, जिससे भारत का, हिन्दी

भाषा का और उन महाकवियों का नाम जगत भर में ऊंचा हो। इस उद्देश्य से मैंने तरह-तरह से नाना प्रसंग उठाये हैं। जिनके सामने वाणी और अर्थ कुछ भी नहीं आए वे तो अधम जीवन व्यतीत करते हैं, चाहे कितना भी पैसा कमाते हों, अधिकार रखते हों या नशे में चूर हों। जिनकी आत्मा अपना उद्धार चाहती है वे वाणी और अर्थ की खोज करते हैं। कुछ उद्योग के कारण पाते हैं, कुछ दैव-संयोगसे। नास्तिक कहता है कि हमें पास से अच्छी किताब मिल गई। आस्तिक कहता है कि भगवत्कृपा से। तुलसीदास जी ने देखा कि मोह बहुत सता रहा है। उसको सारे समाज से हटाने के लिए उन्होंने भगीरथ उद्योग किये। नाना ग्रन्थ और संत वाणियां पढ़ीं और सुनीं। उनके नाना प्रकार के अर्थ सुने। तब श्रद्धा उत्पन्न हुई।

श्रद्धा कई प्रकार से होती है। *उसका उल्लेख गीता में है।* श्रेष्ठ भाव जब हिमालय जैसा ऊंचा हो, पाषाण जैसा स्थिर और दृढ हो और हिम जैसा शीतल और स्वच्छ हो तब श्रद्धा का जन्मदाता पिता उपस्थित है। साथ ही साथ स्वर्ग का सा परम सौन्दर्य हो तब श्रद्धा की माता का संयोग हुआ। मेनका का अर्थ यही बताया जाता है कि मेरे जोड़ेकी कोई सुन्दरी नहीं। आजकल के पाश्चात्य साहित्य समालोचकों में कई का कहना है कि सौन्दर्य सब कुछ है। हमारे शास्त्रकारों का कहना है कि श्रेष्ठ भाव और श्रेष्ठ सौन्दर्य दोनों के योग से जो श्रद्धा पैदा होती है वही पार्वती श्रद्धा है। बेजोड़ पिता, बेजोड़ माता की बेजोड़ पुत्री। बात सब प्रकार से सत्य है, कारण हिमालय से बहुतेरे परमोच्च ग्रन्थ उतरे और वहीं दिव्य,

श्रद्धा चमकी। हम तो श्रद्धा पार्वती के दर्शन पाकर धन्य होते हैं। श्रद्धा बिना हम अच्छे ग्रन्थों पर किंवा किसी अच्छे काम में अपरिमित परिश्रम नहीं कर सकते। कुछ हद तक चेष्टा करने के बाद फल न पाने पर दोष देखने लगते हैं, और या तो खोजसे विमुख हो जाते हैं या कहते हैं कि और क्या पड़ा है, सब देख तो लिया। यही हालत विदेशियों की होती है। हमारे ग्रन्थों पर परिश्रम बहुत करते हैं, परन्तु पहले से ही शंका को लिये हुए, न कि अटल श्रद्धा के साथ। अत: उनके द्वारा यथार्थ समाधान कम ही हो पाता है। हमारे ग्रन्थ हजारों सैकड़ों वर्षों के कीच से लिपे हुए हैं। इसलिए विदेशियों को दोष भी क्या दिया जाय—यदि वे समाधि में बैठे हुए शिव-समाधान का दर्शन न पावें? श्रद्धा ग्रन्थ इत्यादि को लेती है और उनके मनन पर बड़ी तपस्या करती है। तुलसी दासजीने उसका विवरण रूपक में दिया है। उस विषय पर कुछ निवेदन पीछे कभी करूंगा। श्रद्धा के सामने नाना ग्रन्थ, नाना अर्थ, नाना भावनाएँ, नाना प्रश्न आ खड़े होते हैं। श्रद्धा तपस्या करती रहती है। अन्त में विश्वास आता है। श्रद्धा और विश्वास का योग होता है। वही पार्वती शिव का विवाह है। बड़ा गूढ़ और बड़ा रोचक प्रसंग है। जब सिद्धांत स्थिर हो गये, विश्वास के दर्शन हो गए तब विश्वास गौरव-पूर्ण शान्त शिव अद्वैत रूप बोध देने के लिए तैयार होता है। किन्तु बोध लेने वाला शिष्य बहुत चञ्चल होता है। जितना चंञ्चल उतना तीव्र। आदर्श गुरु उसे अपने सिर पर चढ़ाये रखता है और अंत में उसे पूर्णचन्द्र बना देता है। वही भगवान की उपमा है। इस उपमा का सबसे बड़ा दर्शक जो होता है, वही कवीश्वर है। सत्य को कार्य-रूप में निरंतर भक्ति के साथ जो परिणत करता है उसे कपीश्वर कहिये। कर्मकांड का वेद शाखा से अटल संबंध है। इसलिए कर्म प्रधान सेवक को शाखामृग कहिये तो उन्हें

कोई आपत्ति नहीं। इनमे सर्वश्रेष्ठ जो है वे सीताराम के परम सेवक हैं। राम की महिमा का कोई अन्त नहीं है। पुराने मन्थ पुराने नहीं पड़े, नई ज्योति के लिए स्थान भी सदैव है। यह भी विलक्षण संबन्ध है। रामायण के असली अर्थ का सार रामायण के आरंभ के सात संस्कृत श्लोकों और पाच सोरठों मे दिया हुआ है। वही सनातन शाश्वत रूप और अर्थ है। श्लोकों और सोरठों के विषय मे मैं पहले निवेदन कर चुका हूं कि इन सब का सामवेद के उत्तरार्च्चिक के प्रथम दो अध्यायों के साथ सतुलन है। यह ज्ञानमात्र, कर्ममात्र, भक्ति-मात्र की अनादि अनत कथा है। या यों कहिये, प्राणों का प्राण है। इसमे सभी वह मन्थ, सभी ज्ञान, उपकथा कलाकौशल, अपने आप समा जाते हैं। रामायण के इस रास्ते पर सभी सत, सभी अवतार, सभी भावों से भेट होती है। वास्तव में यह आत्मा की परम अवस्था का प्रकाश है। बहुतेरे दर्शन ग्रन्थों से यही अन्तर है कि इसमें केवल निर्गुण की ओर इशारा, नहीं है। सगुण निर्गुण रूप है। जैसे ऊपर कह आया हू। शिव परब्रह्म होते हुए जगत् मे विश्वास रूप से दीखते हैं। राम परब्रह्म होते हुए जगत् के व्यापक रूप मे रामलीला करते हैं। जनता के लिए रामायण की और अन्य काव्य ग्रन्थों की यह महान् सुगमता और उपयोगिता है। फिर भी राम का खेल हमारे लिए हँसी खेल नहीं है। रामायण के रास्ते राम के लिए आनन्द पथ हैं, परन्तु हम तो उनके गूढ़ रहस्यों से चकरा जाते हैं। मैं तो एक आत्त करोडों आर्त्तों की ओरसे पुकार रहा हूँ कि हमें रामायण के आरभ में बताये हुए अर्थ की आवश्यकता है। शुरू मे जो टिकेट मिला उसी के अनुसार रास्ते के अन्त तक पहुचने की इच्छा है। बताने वाले बतावें।

रामायण के रास्ते जब तक हमें स्पष्ट नहीं दिखेंगे तबतक हमें स्वाधीनता का आनन्द नहीं आयगा। रामायण के संकीर्ण अर्थ द्वारा जब तक हम रामायण के रास्तों को संकीर्ण बनाये रखेंगे तब तक हमारी गति भी हीन रहेगी। रामायण के स्थान में ठग विद्या चलती रहेगी। यह एक व्यापक प्रश्न है। दूसरों के पारस्परिक मिहनत के कारण भारतवर्ष के यहां में उन्नति हुई है। अभी भारतीय धर्म, भारतीय साहित्य और राष्ट्रभाषा के बल सामने उतने नहीं आये हैं जितने कि हमारे स्थान और जनसंख्या बल। हम जितने बलिष्ठ होते जा रहे हैं उतना ही हमारे धर्म और साहित्यका विरोध होता जा रहा है। आज यदि सभी भारतवासी विदेशी भाषा, विदेशी साहित्य विदेशी धर्म अपना सकते और उनसे काम चला सकते, तब बात कुछ और हो भी सकती। परन्तु जब वैसा हो नहीं सकता तब हमें अपने रास्ते पर चलना है। इसमें सब प्रकार के सुधार कर लें और विदेशों से अच्छी चीजों को लेते चलें तो अच्छा है।

एक बार संक्षेप के साथ आक्षेपों को देख लें। (१) धर्म मात्र ही मारों की टट्टी है (२) वेद पुराने जमाने के लिए ठीक होंगे, आज उन पर परिश्रम करना व्यर्थ है। (३) उपनिषद् जंगल की ओर पहुंचाने वाले, समाज को पीछे गिराने

वाले ग्रंथ हैं ।,जो गेरुआवस्त्र-धारी उपनिषदों को लिये फिरते हैं वे समाज पर भार हैं (४) गीता मे कुछ अच्छे पद है परन्तु परस्पर विरोधी और बचपनके वाक्योंसे मिश्रित । (५) भागवत इत्यादि भक्ति मार्ग के ग्रन्थों और कीर्तनों द्वारा समाजमें पाप और अंध विश्वास फैले हुए है । जो जितना तिलकधारी है, . बहुधा वह उतना ही ढोंगी पाया जाता है । (६) पुराणों और धर्मशास्त्र की उपयोगिता कभी थी, पर आज नहीं है । वे भ्रम में डालने वाले हैं । उनको छोडकर आजकलके मनुओंको, शरण लेनी चाहिए । (७) रामायण कथा मात्र है, मीरा-बिहारी और विद्यापति मे शृंगार छोडकर और कोई गम्भीर धार्मिक अर्थ नहीं है और सूरदास और कबीरदास आजकल के विद्वानों के बीच चमक नहीं सकते । (८) हिन्दी भाषा तो खंडित अवस्था में है । उसका साहित्य क्षेत्र मे ऊंचा स्थान नहीं । (६) हिन्दू धर्म, हिन्दू साहित्य और हिन्दी भाषा की उन्नति की निकट भविष्य में कोई आशा नहीं । इसलिए दूसरे रास्तों पर चलो ।

एवरेस्ट की चढ़ाई की महिमा उच्चतम समझी गई, कारण २६००० फीट से ऊंचा कोई मनुष्य आधुनिक इतिहास मे नहीं चढ़ पाया था । हर्ष और गौरव के साथ इस कार्यके तप, मनोबल व शारीरिक दृढ़ता की प्रशंसा हम सब करते रहेंगे। परन्तु जिस दिन नवयुवकगण हमारे धर्म, हमारे साहित्य और हमारी भाषाओं के चरम शिखर तक पहुचगे और उनसे हो सका तो कुछ नयी देन भी देंगे उस दिन भारत के गौरव का ठिकाना नहीं रहेगा । आधुनिक आविष्कार हमारे हाथ से छूटेंगे तो

नहीं ही; वरन हमारे बच्चे बच्चे को सुलभ हो जायेंगे । साथ ही साथ हमारी प्राचीन निधियां जो अभी भी, अनमोल और अटल हैं, समाज के उत्थान में बड़ी सहायक होंगी और भारत को ही क्यों, विश्व तक को रूपान्तरित कर देंगी। इसी की थोड़ी बहुत चर्चा के लिए विश्वमित्र की कृपा से रामायण के रास्ते अयोग्य ढंग से ही हो, आरम्भ किये गये । काशी-कानपुर इत्यादि नाना केन्द्रों से आशीर्वाद प्राप्त हुए। इनके लिए हृदय से आभारी हूँ । कलकत्ते में काफी चर्चा चली है, इसकी मुझे प्रतिदिन जानकारी होती रहती है । मेरा परिश्रम सार्थक हुआ। मुझे पूर्ण आशा है कि शीघ्र ही वयोवृद्ध विद्वानों और अदम्य उत्साहयुक्त नवयुवकों द्वारा धर्म, साहित्य और भाषा के सब शिखरों पर न केवल चढ़ाई होगी, परन्तु उनके विवरणों द्वारा विश्व का कल्याण होगा ।

आज के संकट के समय हर मनुष्यका कर्तव्य और अधिकार है कि यदि इन विषयों पर जनता उसकी देखी सुनी बातों को जानना चाहे तो वह उन्हें जनता के सामने उपस्थित करे । उपर्युक्त आक्षेपों के विषय में मेरा नम्र निवेदन है कि (१) धर्म के अभाव के कारण और उससे भी अधिक धर्म के विकृत रूप के कारण हमारे देश का बहुत पतन हुआ है और होता जा रहा है । जैसे डाक्टरों को रोग के भीतरी फैलाव का अधिक पता लगता है वैसे ही कानून के अधिवक्ताओं को समाज में धर्म की अवनति और उसके दुष्परिणामों का विशेष अनुभव होता रहता है । मेरे लिए प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व और द्वितीय विश्वयुद्ध के बादकी स्थितियों का संतुलन करना संभव रहा है।

सच्चा धर्म बिना भारतवर्ष स्वाधीनता तक हो बैठ सकता है। दूसरों का कठपुतला बना रहेगा। यहां तक कि एक व्यक्ति दूसरे का विश्वास तक नहीं करेगा। (२) वेद में कितनी नई शक्ति है वह तो वेदका सच्चा अर्थ लगानेसे पता लगेगा। वेद का सच्चा अर्थ गीता और रामायण इत्यादि उच्चतम ग्रन्थों द्वारा लग सकता है। यह किसी एक मनुष्य का काम नहीं है। वेद सहस्रों ऋषियों के सम्मिलित साहसी उद्योग और कृपा से आज तक बचे रहे। अब सहस्रों भक्तों द्वारा मानव जाति का कल्याण अपनी "तरल ज्योति" द्वारा कर सकते हैं। (३) उपनिषदोंमें संन्यास धर्म है और कर्म योग भी है। जिसकी जैसी आवश्यकता। उपनिषदों की भी सजावट अद्भुत बनती है, जिससे अर्थपर मुझ सरीखे साधारण मनुष्योंके लिए प्रकाश पडता है और आनन्दका अन्त नहीं रहता। [४] गीताके बारह भावों और ६ ऐश्वर्योंके अनुसार अठारह अध्यायोंका अर्थ लगाने से सब आक्षेप दूर हो जाते हैं। इसकी चर्चा मैंने बहुत स्थलोंमें की है। विश्वमित्रमें तीन चार लेख भी लिखे। अभी तक किसी ने कोई त्रुटि नहीं बताई। केवल यही कहते हैं कि यह दृष्टिकोण नया सा लगता है। एकाएक पुरानी प्रणाली से कैसे हट जांय? मेरा निवेदन है कि यह तो रुचि और प्रेरणा पर निर्भर है। [५] भक्ति भावना की बात है। इसके स्रोत में निष्कपट हृदयसे जो जितना बहता है वह उतना ही सत्य और पवित्रता और परम पुरुषार्थ के निकट पहुचता है। भक्ति की यही धारा है, यही फल है, यही कसौटी है। [६] पुराणों और धर्म शास्त्रों के पदों को धोकर फिर उनकी पूजा करनी चाहिए। यही शास्त्र की आज्ञा है। रामायणमें बारबार इसका उल्लेख है।

नहीं हीं; बरंच हमारे बच्चे-बच्चे को सुलभ हो जायेंगे। साथ ही साथ हमारी प्राचीन निधियां जो अभी भी अनमोल और अटल हैं, समाज के उत्थान में बड़ी सहायक होंगी और भारत को ही क्यों, विश्व तक को रूपान्तरित कर देंगी। इसी की थोड़ी बहुत चर्चा के लिए विश्वमित्र की कृपा से रामायण के रास्ते अयोग्य ढंग से ही हो, आरम्भ किये गये। काशी-कानपुर इत्यादि नाना केन्द्रोंसे आशीर्वाद प्राप्त हुए। उनके लिए हृदय से आभारी हूं। कलकत्ते में काफी चर्चा चली है; इसकी मुझे प्रतिदिन जानकारी होती रहती है। मेरा परिश्रम सार्थक हुआ। मुझे पूर्ण आशा है कि शीघ्र ही वयोवृद्ध विद्वानों और अदम्य उत्साहयुक्त नवयुवकों द्वारा धर्म, साहित्य और भाषा के सत्य शिखरों पर न केवल चढ़ाई होगी, परन्तु उनके विवरणों द्वारा विश्व का कल्याण होगा।

आज के संकट के समय हर मनुष्यका कर्त्तव्य और अधिकार है कि यदि इन विषयों पर जनता उसकी देखी सुनी बातों को जानना चाहे तो वह उन्हें जनता के सामने उपस्थित करे। उपर्युक्त आक्षेपों के विषय में मेरा नम्र निवेदन है कि (१) धर्म के प्रभाव के कारण और उससे भी अधिक धर्म के विकृत रूप के कारण हमारे देश का बहुत पतन हुआ है और होता जा रहा है। जैसे डाक्टरों को रोग के भीतरी फैलाव का अधिक पता लगता है वैसे ही कानून के अधिवक्ताओं को समाज में धर्म की अवनति और उसके दुष्परिणामों का विशेष अनुभव होता रहता है। मेरे लिए प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व और द्वितीय विश्वयुद्ध के बादकी स्थितियों का संतुलन करना संभव रहा है।

सच्चा धर्म बिना भारतवर्ष स्वाधीनता तक हो दैठ सकता है। दूसरों का कठपुतला बना रहेगा। यहां तक कि एक व्यक्ति दूसरे का विश्वास तक नहीं करेगा। (२) वेद में कितनी नई शक्ति है यह तो वेदका सच्चा अर्थ लगानेसे पता लगेगा। वेद का सच्चा अर्थ गीता और रामायण इत्यादि उच्चतम ग्रन्थों द्वारा लग सकता है। यह किसी एक मनुष्य का काम नहीं है। वेद सहस्रों ऋषियों के सम्मिलित सोद्देशी उद्योग और कृपा से आज तक बचे रहे। अब सहस्रों भक्तों द्वारा मानव जाति का कल्याण अपनी "तरल ज्योति" द्वारा कर सकते हैं। (३) उपनिषदोंमें संन्यास धर्म है और कर्म योग भी है। जिसकी जैसी आवश्यकता। उपनिषदों की भी सजावट अद्भुत बनती है, जिससे अर्थपर गुरु भरोसे साधारण मनुष्योंके लिए प्रकाश पड़ता है और आनन्दका अन्त नहीं रहता। [४] गीताके बारह भावों और ६ ऐश्वर्योंके अनुसार अठारह अध्यायोंका अर्थ लगाने से सब आक्षेप दूर हो जाते हैं। इसकी चर्चा मैंने बहुत स्थलोंमें की है। विश्वमित्रमें तीन चार लेख भी लिखे। अभी तक किसी ने कोई त्रुटि नहीं बताई। केवल यही कहते है कि यह दृष्टिकोण नया सा लगता है। एकाएक पुरानी प्रणाली से कैसे हट जाय? मेरा निवेदन है कि यह तो रुचि और प्रेरणा पर निर्भर है। [५] भक्ति भावना की बात है। इसके स्रोत में निष्कपट हृदयसे जो जितना बहता है वह उतना ही सत्य और पवित्रता और परम पुरुषार्थ के निकट पहुंचता है। भक्ति की यही धारा है, यही कल है, यही कसौटी है। [६] पुराणों और धर्म शास्त्रों के पदों को धोकर फिर उनकी पूजा करनी चाहिए। यही शास्त्र की आज्ञा है। रामायणमें बारबार इसका उल्लेख है।

नहीं ही; वरंच हमारे बच्चे बच्चे को सुलभ हो जायेंगे । साथ ही साथ हमारी प्राचीन निधियां जो अभी भी, अनमोल और अटल हैं, समाज के उत्थान में बड़ी सहायक होंगी और भारत को ही क्यों, विश्व तक को रूपान्तरित कर देंगी। इसी की छोटी बहुत चर्चा के लिए विश्वमित्र की कृपा से रामायण के रास्ते अयोग्य ढंग से ही हो, आरम्भ किये गये । काशी-कानपुर इत्यादि नाना केन्द्रोंसे आशीर्वाद प्राप्त हुए। उनके लिए हृदय से आभारी हूं । कलकत्ते में काफी चर्चा चली है, इसकी मुझे प्रतिदिन जानकारी होती रहती है । मेरा परिश्रम सार्थक हुआ। मुझे पूर्ण आशा है कि शीघ्र ही वयोवृद्ध विद्वानों और अदम्य उत्साहयुक्त नवयुवकों द्वारा धर्म, साहित्य और भाषा के सत्य शिखरों पर न केवल चढ़ाई होगी, परन्तु उनके विवरणों द्वारा विश्व का कल्याण होगा ।

आज के संकट के समय हर मनुष्यका कर्त्तव्य और अधिकार है कि यदि इन विषयों पर जनता उसकी देखी सुनी बातों को जानना चाहे तो वह उन्हें जनता के सामने उपस्थित करे । उपर्युक्त आक्षेपों के विषय में मेरा नम्र निवेदन है कि (१) धर्म के प्रभाव के कारण और उससे भी अधिक धर्म के विकृत रूप के कारण हमारे देश का बहुत पतन हुआ है और होता जा रहा है । जैसे डाक्टरों को रोग के भीतरी फैलाव का अधिक पता लगता है वैसे ही कानून के अधिवक्ताओं को समाज में धर्म की अवनति और उसके दुष्परिणामों का विशेष अनुभव होता रहता है । मेरे लिए प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व और द्वितीय विश्वयुद्ध के बादकी स्थितियों का संतुलन करना संभव रहा है।

सच्चा धर्म बिना भारतवर्ष स्वाधीनता तक रो दे सकता है। दूसरों का कठपुतला बना रहेगा। यहां तक कि एक व्यक्ति दूसरे का विश्वास तक नहीं करेगा। (२) वेद में कितनी नई शक्ति है वह तो वेदका सच्चा अर्थ लगानेसे पता लगेगा। वेद का सच्चा अर्थ गीता और रामायण इत्यादि उच्चतम ग्रन्थों द्वारा लग सकता है। यह किसी एक मनुष्य का काम नहीं है। वेद सहस्रों ऋषियों के सम्मिलित सोहसी उद्योग और कृपा से आज तक बचे रहे। अब सहस्रों भक्तों द्वारा मानव जाति का कल्याण अपनी "तरल ज्योति" द्वारा कर सकते हैं। (३) उपनिषदोंमें संन्यास धर्म है और कर्म योग भी है। जिसकी जैसी आवश्यकता। उपनिषदों की भी सजावट अद्भुत बनती है, जिससे अथर्वर शुक सरीखे साधारण मनुष्योंके लिए प्रकाश पड़ता है और आनन्दका अन्त नहीं रहता। [४] गीताके बारह भावों और ६ ऐश्वर्योंके अनुसार अठारह अध्यायोंका अर्थ लगाने से सब आक्षेप दूर हो जाते हैं। इसकी चर्चा मैंने बहुत स्थलोंमें की है। विश्वमित्रमें तीन चार लेख भी लिखे। अभी तक किसी ने कोई त्रुटि नहीं बताई। केवल यही कहते हैं कि यह दृष्टिकोण नया सा लगता है। एकाएक पुरानी प्रणाली से कैसे हट जाय? मेरा निवेदन है कि यह तो रुचि और प्रेरणा पर निर्भर है। [५] भक्ति भावना की बात है। इसके स्रोत में निष्कपट हृदयसे जो जितना बहता है वह उतना ही सत्य और पवित्रता और परम पुरुषार्थ के निकट पहुंचता है। भक्ति की यही धारा है, यही फल है, यही कसौटी है। [६] पुराणों और धर्म शास्त्रों के पदों को धोकर फिर उनकी पूजा करनी चाहिए। यही शास्त्र की आज्ञा है। रामायणमें बारबार इसका उल्लेख है।

पर्दों को धोने का एक ही उपाय है। उनके पुरानेपन को धो डालें और उनके सनातन सत्यको स्वच्छ रूपमें ग्रहण करें। यह काम पुरानी दुनियामें रहने वालों से नहीं होगा। इस शिवधनुष को जीतने के लिए रामशक्ति चाहिए। वह नवयुवकों में आवे यही रामसे प्रार्थना है। उन्हींका दिया हुआ वचन है कि उनकी शक्ति का अवतरण हर देश और हर युग के लिए संभव है। (७) मैं रामायण के रास्ते के पूर्व लेखों में कह चुका हूं, कि रामायण, सूरसागर, मीरा पदावली, बिहारी की सतसई, विद्यापति पदावली और कबीर बीजक ऐश्वर्य के ग्रन्थ हैं। उनमें क्रम-विकास के साथ साथ धार्मिक सिद्धांत सांगोपांग बताए हुए हैं—रूपकोंमें छिपा कर रखे हुए। [८] हिन्दी भाषाका खण्डित होना क्या है ? यों तो सभी भाषाएं जन पद में चोट खाती रहती हैं। और उसीसे उन्नत भी होती रहती हैं यह भाषा मात्र का चमत्कार है।

हिन्दी का भविष्य तो उज्ज्वल ही दीख रहा है। हिन्दी का जो कुछ दुर्भाग्य इस समय है वह हिन्दी भाषियों की उपेक्षा के कारण है। वे यदि अधिकारियों को बाध्य करें कि हिन्दी पत्रोंकी ओर पूर्णतया ध्यान दें और हिन्दी साहित्यके पुस्तकालय ग्राम ग्राममें खुलवाए और हिन्दी व्याख्यान दिलवाये जांय तब निर्णय हो कि हिन्दी भिखारिणी है या महारानी। [९] मैं तो संकीर्णताका पक्षपाती नहीं हू। सभी धर्मों, सभी साहित्यनिधियों, सभी भाषाओं में सार वस्तु ग्रहण करने के पक्ष में हूं। परन्तु अपनी माता अपनी ही है। उसका सम्मान करना हमारा परम कर्तव्य है। अतः रामायण के रास्ते में राम जो मुझे दें वही अच्छा है। वही जनता की सेवा में उपस्थित करता हूं।

मास पारायण के अनुसार रामायण के ३० भाग होते हैं। उनके विषय मे पूर्व लेखों में कुछ कह चुका हूं। उनके दिग्दर्शन की एक सरल रीति यह है कि बालकांड के १२ भागो मे वाणी और अर्थ का विशेष विवेचन समझा जाय। अयोध्याकांड के ६ भागों मे बुद्धि का, तत्पश्चात् धर्म नयो का, अरण्य, किष्किंधा और सुन्दर काडों मे साधु व्यक्तियों की रक्षा और सगठन। लंका काडके तीन भागोंमे दुष्टनाका नाश। फिर अंतिम तीन भागों मे अर्थात् उत्तर कांड मे राम राज्य अर्थात् धर्म स्थापन। हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थों का एक ही हाल है। रूपकों की न केवल भरमार है, रूपक उनके रक्त विन्दु हैं, रूपक उनके प्रकाश हैं, रूपक उनके परम आधार हैं। जो रूपकों मे रुक गये वे वाह्यरूप-विमोहित हो गए। कुछ भीतरी अर्थ भी प्रकारान्तर से रूपक ही है। वास्तव मे रूपकों से छुटकारा नहीं, कारण अव्यक्त का उल्लेख मात्र भी रूपकों द्वारा ही हो सकता है। यही सगुण-निर्गुण रूप है। इसी मे विद्या का स्वच्छ प्रकाश है और संभ्रम भी है, जैसी जिसकी दृष्टि हो।

बालकांड विद्या का कांड है। विद्या के गुरुतर प्रश्नों पर छान बीन है। अत: बारह भागों के प्रथम दो भागों मे वाणी और अर्थ का विशेषत सिंहावलोकन है। आरम्भ से सती द्वारा राम की परीक्षा तक वे दोनों भाग हैं। उनमे ज्ञान के सात सोपानों का सार है। अतः सातकांडी रामायण का ही सार समझिए। प्रथम दो भागों के, इस प्रकार से, सात खण्ड होते

हैं । पहले दिन के विश्राम तक तीन खण्ड हैं। पहला खण्ड आरम्भ से ६वें दोहे तक है । इसमें सुरुचि कहिए या सुबुद्धि इसकी नवधा व्याख्या है। ६वें दोहे के अन्तिम शब्द हैं, जिन्हके विमल विवेक। वहीं से विवेक के प्रश्न पर विचार होता है। वह द्वितीय खण्ड है । ज्ञान का द्वितीय सोपान है। यह १८वें दोहे तक है, जिसके अन्तिम शब्द हैं, "जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।" यहीं से तनुमानसा का विचार होता है। यह ज्ञान का तृतीय सोपान है । वह तृतीय खण्ड २५ वें दोहे तक है ।

ब्रह्म राम तें नाम बड़, वर दायक वर दानि ।
रामचरित सत कोटि महँ लिये महेस जिय जानि ॥

यहां प्रथम दिनका विश्राम है। राम नाम के नित्य भावकी सूचना मिली। सूक्ष्मसे सूक्ष्म और व्यापकसे व्यापक तनुभावकी झांकी है। आत्म परिचय है। वाणीकी वाणी है। दूसरे दिन ब्रह्म भाव अर्थात् अर्थ-प्राप्ति विशेष रूप से अथच संक्षेप से होगी।[१]

प्रथम दिन के तीन खण्डों में से प्रथम खण्ड में पहले तो संस्कृत के सात श्लोकों और भाषा के पांच सोरठों द्वारा १२ वर्णों या भावों को और ६ ऐश्वर्यमय (५ व्यक्त और १ अव्यक्त) अर्थों को और इशारा है यह मैं पूर्व लेखों में निवेदन कर चुका हूं। फिर चौपाई समेत नव दोहों में सम्बुद्धि की सारगर्भित व्याख्या है। सम्बुद्धि के अन्तर्गत सनातन हैं। उन्हीं से वेद का आरम्भ है। गीता में उनका वर्णन इस प्रकार किया हुआ है —

(१) सुहृद्, (२) मित्र, (३) अरि [४] उदासीन [५] मध्यस्थ [६] द्वेषी [७] बन्धु (८) साधु तथा। (९) पापके वातावरण में।

तुलसीदासजी के प्रयुक्त चौपाई समेत ६ दोहों में आत्मा

पहले तो अपने आप को सम्भालती है, फिर समाज पर व्यापक दृष्टि डालती है—वह भी भूत, वर्त्तमान, भविष्य तक। राज ग्रन्थ के लिए इस प्रकार का राजद्वार और राज संबन्ध बड़ा ही उपयुक्त है।

पहले दोहे तक मे चारो वेद, उपवेद और दर्शन के सार का उल्लेख है। यह मैं पहले कह चुका हूं। गुरु पद है मूल पद, आदि गुरु वेद, चाहे किसी रूप में हो। वेद हमारा परम सुहृद है। वेद हमारे हृदय मे बसता है, हम वेद के हृदय अर्थात् सच्चे अर्थ मे बसते हैं। यही वेद का व्यापक अर्थ है। सच्चा ज्ञान विज्ञान है। इस सौहार्द्र्य से जीवात्माका कल्याण है और मानव जाति की बुद्धि की आदि निर्मलता है। इसके अन्तर्गत आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, गन्धर्व विद्याएँ, धनुर्वेद अर्थात् रक्षा के उपाय सभी हैं। पुरानी और नई रोशनी के सामने "मोह" की पहली हार है।

इतना बड़ा काम आत्मा की एकांगीयता से नहीं हो सकता और मानव जाति मे अकेले-दुकेले मनुष्य से नहीं हो सकता। आत्म शक्तियों मे मैत्री चाहिए। समाज के श्रेष्ठ कर्मियों मे मैत्री चाहिए। नाना दिशाओं से मानो नदियां आती हैं—भिन्न भिन्न प्रकार के जलो को, रसों को, ज्ञान-विज्ञान के तत्त्वों को ले आती हुई। तरह तरह की खेती होती है। कपास की तरह सन्त स्वभाव और संत स्वभाव को तरह कपास के सदुपयोग से लोक कल्याण होता है। इन सब से तीर्थ राज बनते हैं। मैत्री का यह जमाव साधारण कल्पना के बाहर अकथ अलौकिक केंद्र बन जाता है। इस सगम धारा मे कोई कूप-मंडूक नहीं रह सकता। एक एक मित्र एक एक अनोखी वस्तु सामने लाता है और सब उससे लाभान्वित होते हैं। कोई भी अपने को

सच्चे सत्त्वों नहीं समझ सकता । नाना साहित्य, नाना कलाओं नाना विज्ञान-मार्गों नाना उद्योगों का यहां समागम होता है, वहां मज्जन से सभी के स्वभाव और मस्तिष्क मंज जाते हैं "सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।"
सब को, यहां तक कि समूचे समाज को, चारों फल, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, मिल जाते हैं । यह मोह की दूसरी हार है ।

इसमें बड़ा चमत्कार देखनेमें आता है । कौए जैसा अधम जीव कोयलकी तरह मजलानंदी होता देखा गया है । और बगुले जैसा कपटी भगत हंस जैसा विवेकी और परम पदगामी हो सकता है । इस प्रकार क्या छोटे क्या बड़े बुद्धि की समताको प्राप्त होकर द्वन्द्व रूपी शत्रु से मुक्त होते हैं ।

तीन प्रधान अरि हैं, काम क्रोध और लोभ । वे नरकके द्वार कहे गये हैं । इनके जीतने की बुद्धि क्या व्यक्तिगत, क्या समष्टिगत तीसरे दोहे में बताई गई है । वहां कहा गया है कि मनुष्य को यह घमण्ड नहीं रखना चाहिए कि मैं इतना बड़ा हूं, ऐसा सिद्ध हूं कि सत् संगत बिना अपना उद्धार आप ही कर लूंगा । अच्छे मनुष्यों के साथ विचार-विनिमय करने ही से विवेक उत्पन्न होता है । हर स्थान, हर काल, हर अवस्था, हर योनि में अरि जीवात्मा को या समाज को दबा डालने के लिए खड़ा ही रहता है । वाल्मीकि ने समझा था कि वह बड़ा ही कर्त्तव्यशील है, पर वह उल्टे अधिक पापका भागी बनता गया । हठात् सत्संग हुआ । अन्त में दीमक लगी पुस्तकों और पत्रों के बीच आसन जम गया । कोई भी बात पसन्द नहीं आ रही थी । मरा मरा कहते रहे । अन्त में अन्तःस्थल से सीता राम के आदर्श प्रेम की वाणी सुन, पढ़ने

लगी। वाल्मीकि जी कवीश्वर हुए। अरिदमनीय भाव और रूपक को लेकर रामायण की विभूति चमक उठी। नारद जी अपने को बड़े संयमी मानते थे, पर क्रोध के वशीभूत हुए। हुए भी कामवश और हुए अपने ही इष्ट देवपर क्रुद्ध। फलतः भगवान् को मनुष्य देह धारण करना पड़ा, स्त्री वियोग में व्याकुल होना पड़ा, बानरों की सहायता लेनी पड़ी। सात काण्ड रामायण खड़ी हो गयी, परन्तु वास्तवमे सन्त समाज का नव निर्माण हुआ और नारद के होश ठंडे हुए। अगस्त्य जीने अपनी समझ में अपने बल पर तृष्णा जीत ली। समुन्द्र के समुद्र पी गये और उन्हें बिगाड़ कर छोड़ दिया। परन्तु चुल्लू भर पानी मे डूबने लगे। यो महात्माओंको भी कभी कभी कोई छिपी वासना मग्न कर लेती है। राम के संग के कारण बच गये। यह तो तीन बड़े से बड़े महापुरुषों की कहानी है। इस कथा का कोई अन्त नहीं है। संबल का कोई थाह भी नहीं है। साधारण रसों के व्यापार में लगे हुए तो साग भाजी बेचने वाले कुंजड़े हैं। राम रत्न धातम है। उनके दरबार मे, अनुमोल रत्नों का प्रदर्शन होता है। सबसे बड़ी निधि समता है। उसके द्वारा सोने में सुगन्ध है। न इस लोक मे मादकता, न उस लोक मे तपश्चय। उसका प्रकट रूप है लोक हित। शत्रुता के स्थान में 'रामचरण रति' प्राप्त होती है। यह बुद्धि का तीसरा विकास है। निचोड़ यह निकला कि अकेले को पाकर दुश्मन धर दबाता है। राम के रास्ते मे प्रेम रखने वाले जीवों की रक्षा राम असंख्य निमित्तों द्वारा करते हैं। और वे जीव हार जीत सुख दुख की परवाह न करते हुए राम मार्ग मे चलते जाते हैं। यह सच्ची उदासीनता है।

उदासीनता है बुद्धि का चौथा रूप। तुलसीदास जी हाथ जोड़े खड़े हैं। दुष्टों की नकली उदासीनता भी भयंकरी है। सामने से खुल्लमखुल्ला विरोध न भी करते हैं तो 'बिनु काज दाहिने बाये' होते ही रहते हैं। दुष्ट जन मर मट कर भी मारते हैं—राहु की ज्यों और मार कर मरते हैं—घो में मक्खी की ज्यों। तुलसीदास उदासीन हैं, हाथ जोड़े खड़े हैं, कारण उनके भगवान श्री राम भी हाथ समेटे हुए हैं। दुष्ट अपनी अग्नि मे जलता है। जहाँ तक हो सके, उन्हें दूर से नमस्कार करना अच्छा है, परन्तु 'विनती करइ सप्रीति'। 'क्षमा करो भाई! तुम खुश रहो, हम खुश रहें। तुम अपने स्वभाव से लाचार हो, हम अपने स्वभावसे लाचार हैं। तुम अपने रास्ते चलो, हम 'हरि हर जस' के सेवक हैं।" भक्त यों कहता तो है, परन्तु सत्कर्म से उदासीन नहीं हो सकता। उसे समाज के मध्य मे रहना है।

मध्यस्थ वास के कारण मध्यस्थ बुद्धि रखनी पड़ती है। यह पाँचवां प्रसंग है। जनता के मध्य मे रहने के कारण मनुष्य नाना सम्पर्कों से सर्वथा बच नहीं सकता। भव सागर का समुद्र मथन सा होता रहता है। अमृत और विष से काम पड़ता ही रहता है। दोनों के बीच रहते हुए भी भलाई के मध्य में स्थित हो—'भलो भलाइहि पै लहहिं'। तभी उसकी बुद्धि ठीक ठिकाने है।

फिर भी उससे द्वेष करने वाले होंगे। ब्रह्मा की सृष्टिमें द्वन्द्व है। भक्त देव तुल्य है तो द्वेषी असुर रूप है। यह द्वेष केवल पृथ्वीमें नहीं है। गुण दोषोंका विभाग त्रिभुवन-व्यापी है। इस द्वेषमय जगत्में 'संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार'। जब राम को ऐसी सृष्टि से द्वेष नहीं—शान्त भाव से अपनी वेदवाणी द्वारा गुण दोषों का वर्णन और उनके पाथ्य का वर्णन कर दिया है—तब तुलसीदास तो उसी मानस के हंस हैं। यही असली बंधुत्व है। 'अस विवेक जब देइ विधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता।' तुलसीदासजीने स्वभाव, वेष और सगति के महत्व के प्रश्नों की ओर इशारा मात्र किया है और चन्द्रमा के शुक्ल और कृष्ण पक्ष का उदाहरण देकर उर्ध्वाभिमुखी और निम्न भिमुखी के भेद को स्पष्ट कर दिया है। रामचरित का गायक सभी का बन्धु है। इसलिए वह अनुचित रूप से बुरे को अधिक बुरा नहीं कहेगा और भले को अधिक भला नहीं कहेगा। इस बान्धव बुद्धि के कारण सत्य में प्रवेश मिलता है। इसीसे उसकी बात झूठी नहीं होती।

साधु बुद्धि आठवीं अवस्था है। दूरदर्शी राम जानते हैं कि जो आज बुरा है वह कभी न कभी बुराई के रास्ते मे रुकेगा, वापस लौटेगा, शुद्ध विचार करेगा। तब 'साधुरेव स मन्तव्य, सम्यक व्यवस्थितो हि स।' रामकी दृष्टि में कोई आज साधु है, कोई कल। इसलिए राम सबके लिए साधु हैं। जब दण्ड देते हैं तब भी साधुतासे नहीं हटते। रामके इन गुणोंके सामने साधारण बुद्धि थक जाय, परन्तु साधु-समाजका रामके साथ वैसा ही प्रेम है जैसा रामनामके साथ पूर्ण चन्द्रका। उसी समाजका सब-सिखुओंको भरोसा है। 'पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास'। जो खल हैं वे पापको देखा हैं। वे अरि या द्वेषी हो हों

यह कोई आवश्यक नहीं। घमण्ड या प्रमाद अथवा अज्ञान वश परकृति-हन्तारक होनेवाले बहुतेरे छोटे हृदयके मनुष्य होते हैं। कला और साहित्य के इतिहास में उनका काला दाग है। बहुतेरे कलाकार और साहित्यकार अन्य विपदाओं से नहीं हारे, परन्तु अनाप-शनाप टीका-टिप्पणियों की चोट खाकर या तो पागल हो गए या प्राणों से हाथ धो बैठे। यह मोह की अन्तिम लात है। इसलिए उसके मुकाबले की दृढ़ शुद्ध बुद्धि भी बुद्धि की चरम सीमा है। ऋषियों ने उसको अन्तिम स्थान भी दिया है, वह बुद्धि अपने ध्येय पर स्थिर रहती है, अन्यथा चाहे गुण-रहित हो चाहे त्रिगुणातीत। वही बुद्धि अपनी रचना का समर्पण करती है—उसी बुद्धि के प्रति—चाहे अपने शरीर में या अन्य शरीर में।

'भनिति मोरि सब गुन रहित
विस्व विदित गुन एक।
सो विचारि सुनिहहिं सुमति
जिन्ह के बिमल बिबेक।

गया था। अत अर्थ व्याख्यान केवल भांग या अफीम रही, परन्तु गले की फांसी हो गई। सूत्य के विपरीत आचरण तक का प्रचार हुआ—मानो अर्थ के नाम में हलाहल विष का परिवेशन। श्रोता और विद्यार्थीगण नीलकण्ठ महादेव तो थे ही नहीं कि समूचे अनर्थ के विष को गले में डाल कर अपने मस्तिष्क, हृदय और इन्द्रियों को शुद्ध बनाये रखने और ऐसी अवस्था में स्वस्थ बचे रहते। वेद, उपनिषद्, बाल्मीकि, कालिदास इत्यादि के उपस्थित रहते हुए व्याख्याओं के कारण सत्य छिपा सा रहा। धर्म प्राय डूब गया। इसलिए गोस्वामी जी ने पहले दिन के आरभ में प्रथमत सनातन सत्य वाणी का सार, फिर सत्य का स्वरूप, फिर बुद्धि की नव मुखी झांकी दे दी। और उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि वह बुद्धि तभी परिमार्जित होती है जब सन्त समाज के सुरुचिपूर्ण वातावरण में तपा ली गई हो। एक मनुष्य की अकेली बुद्धि धोखा खा जा सकती है। इसलिए विद्वान् वही है जो विनयशील है, पक्षपात रहित है, सत्य सहयोग प्रेमी है। यही साधारण बुद्धि के परे की वस्तु है। यही सत्य विवेक है। इसी को विचारणा कहते हैं। यह जो फैसला करती व सुनाती है वह सत्य होता है, जग हितकर होता है।

साधारण जन आश्चर्य प्रगट किया करते हैं कि तुलसीदास जी बडी लम्बी चौडी भूमिका और इधर उधर की बातों के बाद वस्तविक राम कथा पर आते हैं। किंतु यह स्पष्ट है कि तुलसीदास जी को पण्डितों की ओर से प्रबल विरोध मिल रहा था। वस विरोध का वृहत प्रतिकार वे विचलित होकर नहीं, वरन् धीरता पूर्वक महान् उद्देश्य के कारण कर रहे थे। उस समय के साधारण पण्डितगण काम, क्रोध और लोभ के वशीभूत थे। तदनुकूल अर्थ के प्रचारित करने मे उनका स्वार्थ था।

कामुक अर्थ के प्रचार बिना उनकी काम-वासना खुले आम तृप्त कैसे होती? चेलियों के साथ रंगरेलियाँ कैसे बनतीं? रासलीला के नाम पर काम लीला की निरन्तर स्थिति सुगम बनी हुई थी। क्रोध के बल पर किसी को सत्य विचार प्रगट नहीं करने देते थे। उनका रामचरितमानस के प्रति आक्रोश केवल इस कारण से नहीं था कि वह भाषा में लिखा गया इससे कहीं बड़ा कारण यह था कि अब साधारण जनता को समूचे शास्त्रों का सच्चा रूप मिल जाता। इसीलिए रामचरितमानस को चोरी करके नष्ट करने के लिए गुरुओं के दङ्गल तैयार हुए। फिर लोभ का भी ख्याल कम नहीं था। अर्घा पूजा बनी रहे तो सस्ती दक्षिणा मिलती रहे। रामचरितमानस ग्राम ग्राम में फैल जाता और जनता में नव प्रकार से बुद्धि को विकसित करने के लिए सर्वप्रथम सीख दी जाती तब तो झूठी प्रभुता पर बड़ा धक्का लगता। विरोध का यह भी एक बड़ा कारण रहा। जो हो, गोस्वामी जी इन बातों को भली भांति समझ चुके थे और इसीलिए दृढ़ से दृढ़ तथा बड़े से बड़े आकार की बुनियाद पर उन्होंने कथाभाग को रखा। यह तो बाद का इतिहास है कि अन्त में विश्वनाथ जी के मन्दिर में एक सच्ची आत्मा वाली शक्ति ने रामचरितमानस का समर्थन किया। ग्रन्थ समझने के लिए श्रेष्ठ बुद्धि और उस ग्रन्थ संक्रान्ति के आवश्यक तत्वों और इतिहास की सहायता के बिना काम नहीं चलता। इन्हीं को लेकर विवेक काम करता है।

रामचरितमानस में गणेश और शिव प्रथम आते हैं। कृष्ण छिपे बैठे हैं। गीता के बहुतेरे वचन भाषा में बोल रहे हैं और इस बात की यादगार हैं। देवताओं की जितनी प्रशंसा नहीं उतनी निन्दा। खूब दाहिने बायें मार खाते हैं। इन रहस्य-विषयों पर विचार की आवश्यकता है।

अर्थ का उत्पादन गणेश की कृपासे होता है। यह सभी क्षेत्रों में सत्य है। धर्म के अनुसार जनता का सच्चा नेतृत्व, जनता की भलाई, सब से पहले का विचारणीय विषय है। मैं पहले कह चुका हूँ कि राम रघुनायक ही गणनायक हैं। अर्थात् राम के नेतृत्व में जनता की समबुद्धि के साथ भलाई हो सकती है। इस बात को अमिट सिद्धान्त मान कर धर्म और बुद्धि का सदा के लिए योग उपस्थित कर दिया गया। जैसे अहिंसा परम धर्म है, आचार परम धर्म है वैसे ही समबुद्धि परम धर्म है।

अर्थ पूर्ण होता है शिव की कृपा से। कोई भी बड़ा धार्मिक ग्रन्थ बिना शिव संकल्प के रचा नहीं जा सकता। फिर सत्य की आवश्यकता है। सत्य बिना काम नहीं चल सकता। केवल सत्य से भी काम नहीं चलता। इहलोक की बातें तो ठीक निभ जाती हैं—सत्य के सहारे। अड़चन पड़ती है जब परलोक की बातें—कुछ खुली कुछ मुंदी—सामने आती हैं। सत्य की देवी सती शंका का रूप धारण कर लेती है। शङ्का का अन्त त्रिलोकी नाथ करते हैं। सत्य सती से विश्वास हट जाता है, जो उसका पति है। यों, सत्य ही का करुणाजनक अन्त होता है। फिर श्रद्धा प्रगट होती है। श्रद्धा सत्य ही है, किन्तु उससे अधिक तपवाली। श्रद्धा के महान् रूप और अटल तपस्या से धार्मिक गूढ़ तत्वों का अन्वेषण होता है। अन्त में

समाधान होता है। श्रद्धा और समाधान का विवाह अर्थात् योग होता है। सद्‌गुरु द्वारा पाये हुए शास्त्रवाक्यों और कथाओं का प्रामाणिक विश्‍वसनीय अर्थ ध्यान और मनोयोग द्वारा मिलते हैं। इस प्रकार शिव आदि से अन्त तक राम कथा के प्रवर्त्तक होते हैं। धर्म को उच्चतम शिखर तक पहुँचानेवाले हैं राम। परन्तु रामायण में निष्काम भाव के गीता-वचन के उद्धृत होने के कारण कृष्ण भी भूले नहीं गये। तुलसी दासजी ने सोचा कि पहले देश स्वतन्त्र हो, फिर चैन की वंशी बजे। राम और कृष्ण में तुलसीदास जी ने न भेद किया और न कर ही सकते थे। रामायण कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं है।

देवताओं की दुहाई देकर देश को बड़े कठिन बन्धनों में रखा गया था। इसलिए मुक्ति के अत्यावश्यक उद्देश्य से देवताओं का रोब कुछ उतार देना उचित समझा गया। इस बात में तुलसी दास जी ने बड़े साहस से काम लिया। कुछ समय के लिए लाभ हुआ होगा, परन्तु भारत के लिए रवीन्द्र वाणी सत्य है—'तुमि जे तिमिरे तुमि से तिमिरे।'

सामवेद में उपर्युक्त सभी शक्तियों का सामजस्य है। वह स्वतंत्रता के मेरु शिखर से प्रवाहित होने वाली गंगा है। उसकी बात और है। तौ भी आज भाषा का भेद है, कल देवताओं की फूट देश में यदि फैल जाय तब तो देश के दो टुकड़े नहीं होकर अनेक टुकड़े हो जायेंगे। समय के अनुसार तुलसी दास जी ने कृष्णको रामसाज में देखना चाहा था। हम रामको सर्व साज सर्वनाममें देखना चाहते हैं। रघुकुल रीति में गोविन्द की प्रीति हो। कृष्ण राम के बाण का जवाब हो मीरा की तान से। विवेक का प्रधान कर्म है दैत्य शक्ति को हराना। द्वन्द्व पैदा

करे वही दैत्य। द्वन्द्व को मिटावे वही देव। अमृत दोनों के कण्ठों में पहुँच चुका गया। इसलिए जीत-हार का कोई अन्त नहीं होगा—यह होती ही रहेगी। संग्राम का अन्त नहीं। नाना गुणों के होते हुए भी जो फूट पैदा करे वह गुणी नहीं। अनेक गुणों बिना भी जो राम के आश्रितों में एकता बनाने का गुण रखे उसका वही एक गुण सब गुणों का सिरताज है। उसी एक गुण के ऊर्ज पर विवेक उसे पूरी डिग्री दे देगा। यह प्राड्-विवाक का निश्चित नियम है। विचार को शेष बात है। इसी में राम का विश्वव्यापी नाम है।

दसवें दोहे से अट्ठारहवें तक (चौपाई समेत) में साहित्य विषयक विचार की संक्षिप्त वार्ता है। अन्तरंग में राम हो। बहिरंग नंगा न हो। मंगल मयी कथा हो। अलङ्कार उपयुक्त हों। श्रेष्ठ विचारों का मुक्ताहार हो। सत्य अनुभव के बल पर रचना हो। भूले खोये हुए तत्वों की पुनर्प्राप्ति हो। पूर्व प्रमाणों का ध्यान रहे। भाषा जनता की समझ में आने वाली हो। धार्मिक ग्रन्थों और देवों के प्रति श्रद्धा हो। पुरानी और नयी धाराओं का मिलन हो। कथाके पात्र-पात्रीगण सनातन सत्यके प्रतीक हों। सभी प्रकार के जीवों और भक्तों का श्रद्धामय वर्णन हो। वाणी और अर्थ अनुरूप हों। अर्थ बिना वाणी किस काम की? वाणी बिना अर्थ कैसे ठहरे? सबसे बढ़कर यह गुण हो कि दुःखी मन को शान्ति मिले। 'बन्दउँ सीता राम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।' साहित्य की यही परम उपयोगिता है। शुद्ध प्रकृति यही चाहती है। परम पुरुषार्थ भी यही चाहता है। इस विषय में सबके विचार एक हैं। मन को दुःख और दुःख के कारणों से शुद्ध कर देना तत्पुमानमा है। उन्नीसवें दोहे से पचीसवें तक का प्रकरण है। सबसे छोटी दवा सबसे

विद्या बहुत सुनी—सम बुद्धिके साथ। विचार खूब किया—सज्जनो के साथ। तन-मनको वश किया—अभ्यास-वैराग्य के साथ। सब सिद्धान्त पक्के हुए। बात की बात रही। अच्छा नाम हुआ और बढता ही गया। चरित्र का निर्माण इसी प्रकार होता है। जितने मनुष्य उतने चरित्र। हर मनुष्यमे राम प्राण है। इसलिए जितने मनुष्य उतने राम चरित्र। तुलसीदासजी के समय मनुष्यों की संख्या यदि सौ करोड समझी गयी हो तब सौ करोड के देखे सुने व्यवहारमे लाये हुए सिद्धान्तों और घटनाओं के द्वारा उतने ही रामचरित बने। महात्माओं के हृदय मे बैठी व्यवसायात्मिका बुद्धि महेश शक्ति उनमे से सार रूप मे आदर्श रामचरित निकाल लेती है। वही है समूचे सत्वों का सत्व। दूसरे मासपारायण मे वही ब्रह्मविद्या रूप से आता है—समूचे संसार के नाटक का गूढ अर्थ। आज संसार में दो सौ करोड से अधिक रामायण हैं। आज राम नाम कहां है ? वहीं है जहां सदा से रहता आया है। आज भी वह श्रेष्ठ, समर्थ, स्वामी और नियन्ता है। आज गुरु-परम्परा बिगडी नहीं है, पुस्तको मे तो अवश्य ही विद्यमान है। वक्ता-श्रोता भी हैं, मुद्रक पाठक भी है। राम कथा कहीं गयी नहीं है। गुणों का सार जैसा का तैसा है। महत्व के स्थान अभी भी वर्त्तमान हैं। सत्व कभी 'यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितम्' नहीं होता। राम अनन्त, अनन्तगुण, अमितकथा-

विस्तार। मुनि आचरजु न मानिहहिं, जिन्ह के विमल विचार।

इसकी संक्षिप्त व्याख्या तुलसीदासजी ने इस प्रकार दी है। नाम श्रेष्ठ कैसे ? जो बड़े हैं सो तो बड़े हैं ही, जो छोटे हैं वे भी नामके प्रभावसे बड़े हो जाते हैं। शिवजीका वेष बड़ा अमंगल है। महिम्न स्तोत्र इत्यादि में उसका वर्णन है। एक ही बात लीजिए। संसार में अबतक इतने मनुष्य मर चुके हैं कि चिता की अग्नि आकाश तक पहुँची हुई है। भस्म से सारा संसार छा गया। फिर भी रामनाम अर्थात् जीवन का प्रत्यक्ष गुलजार रहना यह बताता है कि हर्त्ता कभी कर्त्ता के यश में बाधक नहीं है, वास्तव में साधक और मंगलकारक है। जीवन के कवियों के प्रसाद बिना अर्थात् उनकी शिव-भक्ति के उद्‌गार बिना तो शिव मनुष्यों द्वारा भूले हुए ही रहते। 'नाम प्रसाद शंभु अविनासी'। शुक, सनकादि, सिद्ध मुनि योगी गणों ने जगत के मिथ्यापन

पथ पर विचरते हैं। जब तक दुनिया में पक्षपात रहेगा तब तक वीणा बजती रहेगी। आज पूर्वमें सूक्त और पश्चिम में मीड। नारद के सत्य सन्देश में भारत की सगत है। इसलिए भारतका श्रेष्ठ नाम है, परन्तु एक पक्षमे नहीं झुके रहनेके कारण वह जहाँ तहाँ बदनाम है। मैं कह चुका हू कि दत्य चाहते हैं फूट। शास्त्र कहता है कि संसारमे दैत्योंकी सख्या अधिक है। उनके मध्य मे जो रामनाम का जोश रखे वही सबसे बड़ा काम करता है, सबसे अच्छी फूट पैदा करता है—दैत्यों मे फूट। वही प्रह्लाद है, क्रान्तिकारी है, भक्त शिरोमणि है। जो प्रेय विद्या सुरुचि होते हुए भी ध्रुव सत्यको प्यार नहीं करती वह उसके लिए शुभ नहीं है। वह है विमाता। श्रेय विद्यारूपी सुनीति माताके निर्देश से ध्रुव सत्य हरिनाम को पकड़ बैठता है। उसी की जय करता है। पार्थिव राज्य की गोद फिर उसके लिए क्या चीज है ? उसे श्रेष्ठ पद प्राप्त हो जाता है। फिर हनुमानजी की श्रेष्ठता देखिए। उन्होंने तो राम को वश मे कर रखा है। इसी सत्य को गीता में इस प्रकार कहा गया है 'जितात्मन प्रशान्तस्य परं-मात्मा समाहित'। यहाँ तक तो हुई बड़ों की बात। छोटे से-छोटे जीव, अजामिल, गज, गणिका इत्यादि 'भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ'। एक वेश्या अपने बच्चे को रामायण पढ़ा रही थी, मानो तोता को रामनाम रटा रही हो। बच्चा रामनाम रामा-यण पद रटता रहा और वेश्या के हृदय मे परिवर्त्तन होता चला। यह कोई असाधारण घटना नहीं है। जघन्य वृत्ति से मुक्त होकर श्रेष्ठ नाम धारण करती हुई ऐसी बहुत-सी नारियों के धार्मिक दान के वसीयतनामे देखने मे आते रहते हैं। कोई

मद छोड़ना है कोई लोभ। यों नागरे सामने दोष दबते हैं। अन्त में तुलसीदासजी अपनी रामकहानी कहते हैं। 'जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदास।' गफलत की भाँग से तुलसीपत्र के रसिक हुए। उपयोगी और उत्तम काव्य का प्रेम जाग उठा।

दुनिया मे सुवर्ण की सत्ता और हिंसा वे का अंधेर देखकर कविका हृदय रुक-सा जाता है। अपनेको वह असमर्थ मानने लगता है। तब रामनाम अपनी सामर्थ्य दिखाता है। वह सदापत्ति का दूसरा रूप है तुलसीदासजी अकेले। उनके सामने कालनेमि का दुसह दल। तुलसीदासजी का 'राम नाम अवलम्बन एकू'। उसके द्वारा उन्होंने देश भरमें सुमति फैलाई। हनुमानका समर्थ्य जागरित हुआ। जिन्होंने कथा सुनी वे उनसे नाना प्रकार से प्रभावित हुए। अन्त मे राज्यरेन्द्र के स्तम्भ से नृसिंह जैसी ज्ञान भक्ति-कर्म की योग शक्तिने उत्पन्न होकर अत्याचार को

देता है, जैसे कालिदास, कबीर, तुलसीदास और मीरा। बड़े बड़े पंडितों का नाम-निशान तक नहीं रहता। जो रामनाम के सच्चे अर्थ और भक्तकी निन्दा करता है वह स्वयं निन्दाकी मृत्युमें सदा के लिए डूब जाता है। जो सेवक ऐसा भी है कि 'सुनि-अघि नरकहुँ नाक सिकोरी', उसकी नाक नामकीर्तन के कारण ऊँची होती है। और ऊँची नाकवाले निष्प्राण होकर नरक में गिरते हैं। नकली नियन्ताओं के लिए राम की ओर से यही व्यवस्था है।

राम के नियम देखिए। राम स्वयं मूल हैं। भक्तशाखाओं पर बैठे हैं। मूल और शाखा की बराबरी कैसी ? फिर भी 'प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किए आपु सम न।' प्रभु जानते हैं कि ऊर्ध्व मूलम् अधः शाखम्'। प्रभु यह भी जानते हैं कि माया जगत में वृक्षकी जड़ नीचे है और फलों से लदी हुई शाखाएँ ऊपर हैं। परन्तु यहाँ प्रभु का अपने विरुद्ध मीठा उपहास होता है। प्रभु अपने प्रिय भक्तों को कहते हैं, "चलो, हम दोनों समान। वेद और रामचरितमानस एक भाव।" यों राम और नाम की बाजी हो रही।

वेद से जो धारा निकली वह याज्ञवल्क्य द्वारा प्रकाशित हुई और अन्त में तुलसीदासजी द्वारा 'बखानी' गयी।

रामनाम का पुरुषोत्तम रूप ऊपर आ चुका। कथारूप भी विलक्षण है। 'श्रोता वक्ता ग्यानिधि कथा राम कै गूढ़।' योगबल अर्थात् शिवशक्ति से वह उत्पन्न हुई। मूर्तिमान समाधान ने मूर्तिमती श्रद्धा को श्रुतिरूप दे दिया। अ उ म् के मन्त्र पर जिसका आविर्भाव हुआ उसका व म था की

तपस्या द्वारा प्रभाव बढ़ा। यह हुई द्विज-वातावरण की बात। भक्त-वातावरण उससे अधिक प्रभावशाली था। शिवरूपी सत्यप्रेमी गुरुश्रेष्ठ ने कागभुसुंडि को 'राम भगत अधिकारी चीन्हि' राममन्त्र दे दिया। बड़े से बड़े दमन और संकट के समय में भी रामकथा की रक्षा हो गयी। कागभुसुंडि से याज्ञवल्क्य सरीखे ऋषिराज को मिली। याज्ञवल्क्य ने 'तिन्ह पुन भरद्वाज प्रति गाथा'। यहाँ तक कथा बीज रूप से रही। तदुपरान्त, 'औरउ जे हरिभगत सुजाना।

कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥'

इस अंश का विवरण मेरे परम मित्र फादर बुल्के ने अपनी राम कथा में दिया है। उस विवरण को वे १६०० ई० तक ले गये हैं। आरम्भिक काल के विषय में उन्होंने लिखा है, "वैदिक काल में रामकथा की रचना हुई थी अथवा रामकथा सम्बन्धी गाथाएँ प्रचलित हो चुकी थीं, इसकी समस्त विस्तृत वैदिक साहित्य में कोई भी सूचना नहीं दी जाती।" नम्रता के साथ मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। गोस्वामी जी द्वारा शिव और याज्ञवल्क्य का नामोल्लेख ही वैदिक सम्बन्ध की सूचना है। इतना ही क्यों? सामवेद और रामायण के समानपद की ओर इशारा कर चुका हूँ। वेद रामायण के विशेषज्ञ इस ओर दत्तचित्त हो गये हैं, इसकी सूचना पाकर मुझे प्रसन्नता

राम रहित वेद और वेद रहित राम। यह तो शायद ही कोई कहे। प्रचलित मत इतना तो अवश्य कहता है कि वेदका सार निचोड़ कर रामकथा मे मिला दिया गया है; अब उसका विशेष पता नहीं लग सकता। इस मत से भी राम और वेद दोनों का अन्धकार में पड़ जाने का खतरा है। यह अन्धकार चाहे सैकड़ों वर्षों से रहता भी आया हो आज इस पर पूरा प्रकाश पड़ जाना चाहिए। मैं तो अपनी ओर से विशेषज्ञों को कह चुका हूं कि सामवेद के उत्तरार्चिक में रामकथा का सार रूप पूर्णतया मिलता है। उन्हें बहुतसे उदाहरण बता चुका हूं। कई उदाहरण इन लेखों में भी आ गए हैं। एक बात और है। तुलसीदासजी ने स्पष्ट रूप से तो यही कहा है कि "नानापुराण निगमागम सम्मतंयद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि"। इस वाक्य का यही अर्थ लगाया जाता है कि रामायण में वेद के पद स्पष्ट नहीं दीखते, परन्तु उनका प्रभाव रामायण पर है। अन्ततः रामकथा के पूर्व रूप का वेद में होना इस उक्ति से प्रमाणित नहीं होता। राम दर्शन वेद में अवश्य है। कारण रामायण में राम को जब परमात्मा माना गया है तब वेद में परमात्मा संबंधी जितने मन्त्र हैं वे राम की ही महिमा हैं। इस प्रकार से वेद और रामचरितमानस का गूढ़ संबंध माना गया है, परंतु साथ साथ पदों को मिलाकर चलने वाला संबंध नहीं बताया जाता है। पदों के मेल में जो अनुपम शोभा और अर्थ प्रकाश है वह

अन्यथा होना असंभव है। गोस्वामीजी यदि स्पष्ट शब्दों में बता देते कि किस प्रकारसे वेद मंत्रों को भाषारूप मे दे रहे है, तब तो वे और रामचरितमानस अक्षम्य विरोध के शिकार हो चुकते। कुछ परोक्ष अथच यथेष्ट वाच्य रूप से गोस्वामीजी ने बता भी दिया है कि वेद और रामचरितमानस का सबंध किस प्रकार का है। वेद और मुनियोंकी वंदना करते हैं। उस बात को एक बार हम अलग रखे। चार सकेतों की ओर ध्यान दें। पहली बात, रामकथा के द्रष्टा और वक्ता शिवजी हैं। शिवजीकी वाणी है वेदवाणी। दूसरी बात, याज्ञवल्कजी ने भरद्वाजजी को रामकथा गाकर सुनाई। यह यदि सामगान नहीं है तो यह गाना किस वाणी मे हुआ और उसका पता गोस्वामीजी को कसे लगा? तीसरी बात है कि रामकथाके दो किनारे बताये गये हैं, एक वदमत और एक लोकमत। लोक वेद मत मंजुल कूला। दो किनारों का वक्तव्य तभी उपयुक्त होता है जब वद साहित्य और लोक साहित्य के साथ साथ दर्शन चलते रहें। हां, कहीं नदी म बाढ आ जाय वहां एक किनारा न भी दिखे। वैसा हुआ भी है रामायण मे—जहां पुराणों का या अन्य काव्यों

के वाक्यों से मिलान पाया जाता है। बस काम को भी विधि पूर्वक पूर्ण करना चाहिए। यह इने गिने मनुष्यों के बूते का काम नहीं है। सहना न आकुती। सभी राम भक्त इस काम में जुट जांय तभी यह पुरा हो।

"नाम प्रसाद संभु अविनासी" से ३३ वें दोहे तक यह बताया गया है कि राम किस प्रकार से सदा सर्वदा श्रेष्ठ समर्थ स्वामी और नियंता हैं। अतः राम अनन्त हैं। फिर राम कथा की उज्ज्वल परम्परा बताई गई है जिससे कि गुणों के वर्णन का अन्त नहीं। अतः गुण अनंत हैं। तीसरी बात बताई गई है कि भक्तों को अधिकार और श्रेय है कि वे अर्थ को संकीर्ण न रखें। इसी प्रकार "अमित कथा विस्तार" होता है। यह तो कथा के साथ मनमानी नहीं है, उसकी सच्ची सेवा है। उसको हरित बनाए रखना है। उसमें कथा में नवीन रंग, नवीन बल बना रहता है। और आज के समाज के भवरुजपरिवाह का अंत होता है। समाज को सब प्रकार से लाभ और आनंद मिलते हैं। जो पिछड़े रहना चाहते हैं उनकी बात औरहै। परन्तु नये प्रयोग और नये अर्थों को देखकर विचार शील मनुष्य नहीं घबरायेंगे, यह गोस्वामीजी का कहना है। "सुनि आचरजु न मानिहिं जिन्ह के विमल विचार।" नित्य नई रामलीला होती है। तदनुसार नित्य नया विचार।

"नाना भांति राम अवतारा।
रामायण सत कोटि अपारा"।

मैं कह चुका हूं कि आज सारे संसार में मनुष्यों की संख्या दो सौ करोड़ से अधिक मानी जाती है तब उतनी ही रामायण हुई। परन्तु सभी रामायण नहीं हैं एक समान जिसमें

जितना सत्य हो उतनी ही वह अधिक मान्य। अन्त में आदर्श रामायण रहतीहै जिसे शिव ग्रहण करते हैं। शिव विश्वास हैं। अतः वही रामायण हमें सब से प्यारी है जिस पर हमारा पूर्ण विश्वास जमें। ३३ वें दोहे तक रामनाम का त्रिविध सत्यों का वर्णन हुआ। उस त्रिविध रूप में भूत वर्त्तमान भविष्य सब आगए इसीके अन्दर कमसे कम एक और चमत्कार है। तात्विक दृष्टि से होना भी परम उपयुक्त है। वह यह है कि आठ प्रकार की मृत्यु का दमन उसी में है। राम अनन्त है और मृत्यु का अन्त है। संक्षेप में कहना ही उचित है। पहली मृत्यु है अपमान, उसका प्रतिकार होता है लघुसेवक तक के सम्मान से। 'सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी"। दूसरी मृत्यु है निंदा, उसका प्रतिकार होता है "राम सहत उपहास" से। तीसरी मृत्यु है, शोक। उसका प्रतिकार होता है राम के "निज निसि देखि दयानिधि पोसो" के बर्त्ताव से। चौथी मृत्यु है, हानि। उसका प्रतिकार राम "साहिब सीलनिधान" समान पद देकर कर देते हैं। पांचवीं मृत्यु है, धनक्षय। उसका प्रतिकार होता है रामकथामृत रूपी अनमोल धन की रक्षा द्वारा। छठवीं मृत्यु है, रोग। उसका प्रतिकार होता है मन के समूले संदेह मोह भ्रम के हरण से। आसुरी संपदा के नाश से। रामकथा के शीतल गुणों से, "बुध विश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष विभंजनि।" सातवीं मृत्यु तो साक्षात मृत्यु ही है। उसके लिए "जम गन मुहं मसि जग जमुना सी।

जीवन मुकुति हेतु जन कासी॥

"मंत्र महामनि विषय ब्याल के।

मेटत कठिन कुअङ्क भाल के" ॥

आठवीं मृत्यु मनस्ताप का यह हाल है कि रामकथा पूर्ण चन्द्र की ज्यों चमकती है। इसकी शीतलता और प्रकाश और सुधा का अन्त नहीं है। किसी प्रकार के ताप का क्या, आश्रय के लिए स्थान नहीं है। उनके मन में किसी प्रकार की भूठी आसक्ति रहती नहीं "जिन्ह के विमल विचार"। जहां भूठी आसक्ति नहीं, वहां मत्य घटना से चोट नहीं। सत्य वर्णन से आश्चर्य नहीं। रामकथा धारा चलती जाती है। रामनाम बढ़ता जाता है। रामचरित मानस का शिव संकल्प बड़ा मङ्गलमय हुआ। यों वाणी और अर्थ रामायण द्वारा मंगलों के कर्ता हुए।

"एहि विधि सब संसय कर दूरी" से ४३ वें दोहे (क) तक ग्रन्थ का जन्म, नामकरण, वर्णन इत्यादि है। ग्रन्थ के कौन अधिकारी हैं कौन नहीं, और उसकी क्या क्या विशेषताएँ हैं उनका उल्लेख कवि ने अपने विवेक के अनुसार बड़े सुन्दर रूप से किया है।

"अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद। कहउँ जुगल मुनिवर्य कर मिलन सुभग संवाद"। ४३ दोहे (ख) से ४७ वें दोहे तक पदार्थ भावना का विषय है। इसमें सब से बड़े मार्के की बात यह आती है कि कोई कितनाह ज्ञानी हो फिर भी कई बाते जाननी बाकी रहती हैं सात्विक हृदय होते हुए भी राम के विषय मे या रामायण के विषय में शंकाएँ उठ सकती हैं। उनका समाधान जो कोई कर सके उनसे अवश्य पूछ लेना चाहिए। वैसा करने से स्वच्छ भावना बनी रहती है और गूढ से गूढ अर्थ की प्राप्ति होती है। किसी विषय पर भी शेष की बात कहने की शक्ति किसी मनुष्य

मे नहीं है। शेप बात तो "शेष सहस्रसीस जग कारण" लक्ष्मण के पास है। जैसे राम अनत हैं वैसे ही लक्ष्मण अनत हैं। रघुपति कीरति विमल पताका है, तो लक्ष्मण दण्ड समान है। राम पद हैं तो लक्ष्मण टीका हैं। राम विधान हैं तो लक्ष्मण दण्डाधीश हैं। एक नहीं हजारों मस्तिष्क उसमें जुटते हैं। यह एक समय का काम नहीं है। सृष्टि में यही ज्ञान विज्ञान है। विद्याक्षेत्र मे यही ज्ञानविज्ञान की व्याख्या है। इसकी गति बद नहीं होती। यह राम का भाई है, चिर साथी है। राम के पद के अर्थ को भावना नित्य बनी रहती है। भरद्वाज की नि स कोच जिज्ञासा से पता लगा कि ऋषियों को सत्य से कितना नि स्वार्थ प्रेम है। इस बिना कार्य्य कारण का ज्ञान और जगत् व्यवहार अन्धकार में नष्ट हो जाते। यहा रुक जाय, तो "जगत्" का कारण फिर न रहे। इस भावना की पुकार पर त्रिगुणातीत पुरुषोत्तम प्रगट होता है। वह ज्ञान का सातवां सोपान है।

— —

शङ्का और श्रद्धा बिना ज्ञान पूर्ण नहीं होता। ज्ञान की सातवीं सीढ़ी, अर्थात् अन्तिम चरण के सामने वे [शङ्का और श्रद्धा] पदार्थ-भावना लिये खड़ी हैं। शङ्का कहती है, मुझे अभाव है, इसे पूर्ण करो। श्रद्धा कहती है, मुझे आशा है, उसे पूर्ण करो। सत्य मनोवृत्ति से शङ्का उत्पन्न होती है; दिव्य दृष्टि से श्रद्धा। अङ्गरेजी में एक को रीज़न कहते हैं, दूसरी को फेथ। एक है सती, दूसरी है पार्वती। दोनों का शिव अर्थात् समाधान से सम्बन्ध है। विज्ञान शङ्का का समाधान चाहता है। धर्म चाहता है भक्ति का रहस्य।

कई मनुष्य एक भी परमेश्वर में विश्वास करना नहीं चाहते; फिर दो-दो परमेश्वर कैसे? एक शिव और दूसरे राम। फिर उनके अलग-अलग स्त्रियाँ और बाल-बच्चे। विज्ञान ऊपरी मुँह से भले ही कह दे कि कोई परमेश्वर नहीं है, पर विज्ञान का समाधान पर पूरा विश्वास है। उसीसे वह जीता है। गणित कहता है, हमारे प्रश्नों के उत्तर में कोई सन्देह नहीं रहता; कोई रोना-गाना नहीं। निर्विकार निर्विकल्प हैं। इनमें जो शिव हैं वही एक परमेश्वर हैं। इहलोक परलोक के व्यापार में भावी बल से जीवों को दबाने वाले और जीवों में परम पौरुष बल से भावी को दबाने वाले कोई राम परमेश्वर हैं कि नहीं इस बात का सन्देह है।

यह तो आजकल की मामूली घटना है कि आत्मज्ञान [स्पिरिचुअलिटी] की परीक्षा लेने के लिए विज्ञान की सती नाना प्रकार की छलना करती है और विश्वास तक को धोखा देने की चेष्टा करती है। उसमें हारने के कारण वैज्ञानिक सत्य पर से विश्वास कुछ हद तक उठ जाता है, जैसे सती का शिव ने अपमान नहीं किया, किन्तु अर्द्धाङ्गिनी पद से त्याग दिया। शिव का धर्म और भक्ति में विश्वास है। नीति के पालन में व बड़े दृढ़ हैं। साधारण मनुष्य के समझने के लिए परमेश्वर एक होते हुए भी दो प्रकार से दीखते हैं। एक शिव रूप से, दूसरे राम रूप से। यह तो दो दृष्टिकोण हैं—एक ही लक्ष्य पर। वैज्ञानिक और दार्शनिक विश्वास है शिव। जगत् व्यवहार के नियन्ता है राम। अत इनकी अर्द्धाङ्गिनी शक्तियों इत्यादि के विषय में भी भिन्न दृष्टिकोण होते हैं।

वैज्ञानिक सत्य की पहुच सीमित है, परन्तु वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता। वैज्ञानिक मनोवृत्ति भी संसार म रह रह कर चोट खाती है, जगत् के नियन्ताकी निन्दा करती है, उनके नियन्ता होने में शङ्का करती है और उसका तिरस्कार करने के लिए अपना सत्य सतरूप त्याग करके लक्ष्मी के रंग में अपने को रग लेती है। भगवान देखते ही पहचान लेता है और कहता है, तुम कियाँ हो, अपने क्षेत्र में रहो, इधर क्या करती हो ? तब विज्ञान बुद्धि देखती है कि कोई अन्तर्यामी है तो सही तब भयभीत होकर श्रद्धालु हो जाती है। यही सत्य एक सुन्दर कहानी के रूप में पुराणों और रामायण में वर्णित हुआ है। यही सती की कथा के नाम से प्रसिद्ध है।

रामचरित मानस में उस प्रसंग में ज्ञान सम्बन्धी बहुत सी बातों का सार दिया हुआ है।

पहले पहल अगस्त्य ऋषि के पास शिव जी सती के साथ गए। अगस्त्य थे रसके पिपासु और रामकथा के प्रेमी। शिवजी थे वेदान्त के शिरोमणि। अगस्त्य रस की ओर झुके हुए होकर भी बड़े मुनि थे। उन्होंने वेदान्त को केवल सन्यासियों का धर्म न मानते हुए जगत के अखिलेश्वर रूप से स्वीकार किया। शिवजी भी शान्त, शिवम अद्वैतम होते हुए रस के प्रेमी थे। स्वयं राम कथा के द्रष्टा थे। "रामकथा मुनिवर्ज बखानी। सुनि महेश परम सुख मानी।" वेदान्त में रस भरा हुआ है, रस से उतना ही प्रेम है, जितना त्याग से। इसकी जितनी खोज होनी चाहिए उतनी संभवतः अभी तक नहीं हुई है। वह हो तो परम सुख प्राप्ति हो। एक ही शब्द में कह दूं। मेरी बुद्धि में इसकी रूप रेखा मुक्तिकोपनिषद में है। और इस मार्ग से ज्ञान गौण तो रहता ही नहीं है, वरच सर्वाङ्गसुन्दरता के साथ प्रतिपादित होता है। अस्तु। अगस्त्य मुनि समझते थे कि रसखान होने ही से हरिभक्ति का रहस्य पूर्णतया मालूम हो यह कोई बात नहीं। शिवजी जितने अद्वैत के ज्ञाता उतने ही द्वैत के। अतः वेदांत से हरिभक्ति का मर्म प्राप्त हुआ। "कही सम्भु अधिकारी पाई।" वेदांत, रस और हरिभक्ति पर यह जो प्रकाश गोस्वामी जी द्वारा पड़ा है उसकी मार्मिकता अवर्णनीय है। आजतक के प्रचलित मत मतान्तरों में हलचल पैदा करने वाला है। जहां ज्ञान की चरम सीमा का वर्णन है वहां प्रथम से ही इस प्रकार के गंभीर विचारों का होना स्वाभाविक ही है। दक्ष कुमारी जैसी-

बैठी सुन रही थी। कुछ समझी कुछ न भी समझी। इसका शीघ्र ही पता लग गया। पता क्या लगा? बाप और बेटी दोनों में संघर्ष हुआ। दोनों का अंत हुआ। ये तो पीछे की बातें हैं। पहले की घटना उन्हीं का कारण है।

रामचरित्र का दर्शन सब से कठिन है। रसानुभूति, संन्यास मार्ग, भक्ति मार्ग ये सब उसके अन्तर्गत हैं। सीता को खोकर विरही रूप से राम जब तपस्वी वेष में दण्डक वन में विचर रहे थे और भक्ति भाव सभी में उमड़ रहा था तब उतना तो स्पष्ट ही था। रामचरित्र का अव्यक्त भाग बड़े महत्व का है। उसका पता शिवजी को है। परन्तु उनके जैसे निष्पक्ष विद्वान प्रबल शत्रु पर चढ़ाई आरंभ होने के पहले ही धर्मपक्ष के सेनापति के भेद कैसे खोल दें? फिर भी अनर्थ से डरते हुए भी प्रत्यक्ष दर्शन करने का लोभ सँभालना कठिन पाते हैं। "मन हरु लोचन लालची।" अब जब बड़ा से बड़ा संग्राम छिड़ने वाला है उस समय वेदांत यदि रामकर्मी की ओर देखे तक नहीं तब तो पछताने का अन्त नहीं रहेगा। और यदि उसका भेद खोल दे तब अनिष्ट हो सकता है। इस लिए दूर ही से नमस्कार द्वारा सम्मान प्रगट किया। शिवजी ने इतनाही कहा "जय सच्चिदानंद जग पावन" और भावमग्न हो गए। इतने में सब कुछ आ गया। वेदांत के भीतर से मानो गायत्री मन्त्र की वाणी हुई। सब द्वन्द्व मिट गए। पूरा ज्ञान बरस गया, परन्तु सती के मन में शंका हुई। ब्रह्मविद्या साधारण मनुष्य को प्रणाम करती है? कैसा अन्धेर है! वह मनुष्य चाहे सूर्यवंशी हो, वरेण्य हो, परन्तु ब्रह्मतेज की तुलना में क्या है? तब महादेव

ने सती से अवतार का रहस्य बताया। वैज्ञानिक सत्य के मन को शंका और भी बढ़ती गई। अन्त में उसने राम की परीक्षा ली। उस अवसर पर जो रामलीला हुई वह लीलाओं में अद्वितीय है। निष्काम कर्मयोगी सती को प्रणाम करता है, शिव के प्रति असीम अनुराग प्रगट करता है। अपनी माया के बल को हृदय में स्मरण करता है और सती को युग युग में अपने धर्म त्रयी की सनातन छवि का दिग्दर्शन कराता है। उस विश्वरूपदर्शन से यह भी पता चला कि महाविद्या ही क्यों, सभी विद्याएँ उसके अन्तर्गत हैं। "वेदांतकृत् वेदविदेव चाहं"। दिव्य जन्मकर्म का तत्वतः ज्ञान सामने आया। तीन गुणों की माया का भेद खुला। उनके बंधन से रहित अर्थात् त्रिगुणातीत परमपुरुष को सामने देख कर भय हुआ, जैसे अर्जुन को हुआ था। जीवात्मा जब उस पर परमात्मा को अपनी अन्तरात्मा समझ लेती है, तब कोई भय रह नहीं जाता। त्रायते महतो भयात्। प्रलयेन व्यथंतिच। ज्ञान भक्ति कर्म एक साथ पूर्ण होते हैं। यह तुर्यगा ज्ञान की अंतिम भूमिका है। ०

—::—

घोर नास्तिकता की अवस्था में परमात्मा का न कोई झूठा रूप रहता है, न सच्चा। न कोई बड़े काम होते हैं, न आकाश के परे किसी दैवी शक्ति में विश्वास। समाज में मर्यादा के कोई पर्दे नहीं रहते। जहां सब एकाकार, वहां द्वैत भी कैसे? जब आत्मबल नहीं तब किस बल पर हो? इस समय गहन और गंभीर विचारों का और विद्या का तो प्रश्न ही क्या है?

मृत्यु के रहस्य और अमृत के ज्ञान की इस हालत में कौन पूछता है? रात और दिन के भेद को समझने का कोई विवेक साधन नहीं। जीव इस समय अकेला अर्थात् पूरा स्वार्थी और अपनी ही चिंता धारण किए हुए प्राणहीन श्वासोच्छ्वास लेता है। उसकी भी जब हानि होती है, अर्थात् उस श्वास के निकलते ही, फिर कोई नाम निशान भी नहीं रह जाता। न परलोक में न इह लोक में उसकी कोई प्रतिष्ठा रहती है। घोर अंधकार। आगे के पथ प्रदर्शन के लिए कोई ज्योति नहीं, भविष्य का ज्ञान गूढ़ रहस्य में छिपा हुआ। महसागर में सब कुछ डूबा हुआ और उसके भेद का कोई पता नहीं। तुच्छ वासनाओं और कर्मों के कुहासा से जीवन आच्छादित है। ऐसी हालत में एक समय आता है जब परंतप की महिमा प्रगट होती है और उसके अस्तित्व का परिचय मिलता है। तब ज्ञान का जन्म हुआ। शुभ कामना जागृत हुई। सब इच्छाओं से आगे अधिकाधिक ज्ञान प्राप्ति की इच्छा हुई।

मनोबल पहली बार उदय हुआ। सत्य से बन्धुता, असत्य का त्याग। हृदय से कवि-मनीषी गण का संग, प्रणिपात, परिप्रश्न और सच्ची सेवा के साथ, यों ज्ञानोदय आरंभ हुआ। ज्ञान हमारा सुहृद बना और हृदय में बैठ गया।

ज्ञान की सहस्रों रश्मियां हैं और है बड़ी टेढ़ी। सारे ब्रह्माण्डमें फैली हुई हैं। जगत् व्यवहार और जीवनके नीचेसे नीचे स्तर उसके पेचीलेपन से भरे हुए हैं। ऊपर में ब्रह्मज्ञान भी बड़ा ही परोक्ष है। एक ओर तो वीर्यबल से काम लेना है दूसरी ओर मर्यादा पुरुषोत्तम की महिमा बनाई रखनी है। रघुकुल रीति की रक्षा करनी है, अर्थात् स्वधर्म का पालन करना है। फिर सत्य के संकेत पर सब बंधनों को छोड़ निकल भी पड़ना है। यह ज्ञान का प्रभाव है, और उसका बांकापन है।

ज्ञान को पूरे तौरसे कौन जान सकता है ? कौन ऐसा बड़ा प्रवचन कर्त्ता है जो इसकी अन्तिम व्याख्या कर सके ? इस सृष्टि के आदि और अंत का किसी को पता है ? देवगण जिन्होंने अपनी देव शक्तिसे सबको आधान कर रखा है वे तक कर्म आरंभ होने पर प्रगट हुए हैं। पहले की बात, परमपुरुष के रहस्य का, उनको क्या पता ?

कौन जाने इस विसृष्टि का रहस्य। उद्भवस्थितिसंहार कारिणी शक्ति और परमपुरुष की परस्पर व्यवस्था बड़ी ही विचित्र है। हम तो उसका दर्शन करते हैं, चकित होते हैं, और शांत हैं, ज्ञानीजन तर्क करते ही रह गए कि परमात्मा साकार है या निराकार, सगुण है या निर्गुण, जागता है या सोता है, जानता है या नहीं। ज्ञान के पूरे रहस्य को परब्रह्म जाने तो जाने।

सतों की शंका का समाधान और नासदीय सूक्त में शंका का समाधान एक समान है।

हम भी नासदीय सूक्त के ज्ञान का अपने लिए क्यों न उपयोग करें? सृष्टि के आदि की बात होगी, परन्तु हमारे लिए तो सृष्टि का आदि आज है। बहुतेरे मनुष्य बहाना करते हैं कि जीवन के आरंभ में ज्ञान मिल जाता तो मिल जाता अब तो मध्य या अंत आ गया। अब तो हम सृष्टि की दौड़ में पिछड़ गये। आज क्या किया जाय? कई कहते हैं, अब तो कलियुग आ गया। सृष्टि अंत की ओर जा रही है। अब किया दिया कुछ नहीं चलेगा।

ये सब मिथ्या धारणाएं हैं। महत्वाकांक्षा नष्ट होना महान् मूर्खता है। ज्ञान का कोई आदि, मध्य और अंत काल नहीं। सब युग, सब क्षेत्र, सब जीव, सब समय उसके अनुकूल और अधिकारी हैं। ज्ञान तीनों गुणों के बंधन से मुक्त है। ज्ञान स्वयं परब्रह्म है।

ज्ञान की सात सीढ़ियाँ ऋषियों ने सुगमता के लिए बनाईं। इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी पुरा काल में ज्ञानके समूह के सात भागकर दिये गये, बटवारा हो गया और ज्ञान सीमा बद्ध हो गया। सप्त सोपान विश्वव्यापी हैं। उनमें न कोई संकीर्णता है, न कमी हो सकती है। पहली सीढ़ी है सम्पूर्ण शास्त्र, जो आज तक बने हैं और भविष्य में बनते रहेंगे। शास्त्र का अर्थ भी व्यापक से व्यापक है। दूसरी सीढ़ी है विवेक। बुद्धिमान समाज की विचारणा का न अंत हुआ है, न होगा। नाना पक्षों के विवाद चाहे चलें, परंतु अंत में शुद्ध बुद्धि का एक मत निश्चित होता है। ज्ञान की पहली सीढ़ी अर्थात् शास्त्रसमूह और उनके सब अर्थ जितने डांवाडोल रहेंगे उतनाही बुरी अवस्था। दूसरी सीढ़ी सत्य विचार की रहेगी, और यदि दुराग्रह रहा तो इसमें भी अविक। आज का संसार अपने को सब से अधिक

विवेकपन्थी मानता है। एक प्रकार से विचार स्वतंत्रता की स्थापना भी हुई है। परन्तु जड स्वार्थों का मामला जहां आजाता है वहां सत्य असत्य की गिनती कम ही रहती है। फिरभी सब झगड़ों के अन्त में विवेक आता है और जीत कर रहता है। यह ज्ञान की द्विगुण महिमा है। सच्चे वाक्योंकी मर्यादा रहती है और द्विगुण बढ़ती है।

ज्ञानी बहुत है। विचार शक्ति भी रखते हैं। परन्तु तन मन वश मे न हो तो क्या लाभ? अत स्वास्थ्य रक्षा और मनोविज्ञान का इतना महत्व है। इस दिशा में हठयोग की अद्भुत शक्ति की ओर दुनिया का ध्यान कुछ कुछ जा रहा है। ठीक न सधने पर अनेक विघ्न बाधाएं, आपदाएं आ पडती है। परन्तु साधारण व्यावहारिक रूप से तनुमानसा का महत्व सभी स्वीकार करते है। ज्ञानकी तीसरी सीढ़ी बड़ी पिच्छल है और लोग भोगतृप्ति के साधनों मे ऐसे घिरे हैं कि एक बार फिसलते ही जन्मभर की अर्जित विद्या और सिद्धान्तों को लिये दिये माया की विषम धारा मे पड जाते है। एक समय कितने विद्वान् और समझदार थे। आज किस प्रकार मारे मारे फिरते है। ऐसे कितने ही असंयमी मनुष्य देखने में आते रहते हैं। वे तो पशुवत् हुए। उनसे भी बढ़ कर दुरवस्था उन की होती है जो पापी पवित् हो जाते है। चमत्कार की बात यह है कि वैसे भी मनुष्यों को रामनाम तार देता है। न केवल अहल्या बच निकली, परन्तु अनेक पापी जड मूर्ख विद्यावारिधि म रामनाम के प्रभाव से तैरने लगते हैं।

आगे की चार सीढ़ियों के विषय मे पूर्व लेखों मे कुछ विस्तार से निवेदन कर चुका हूँ। सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावना और तूर्यगा। राम चरित मानस के सात काड इन सात सोपानों की व्याख्या हैं। और नाम पारायण के प्रथम दो दिवसों का पाठ इसीका सार है। इनकी थाह पाना

असम्भव है। पुरानी बातों को नए रूप में ग्रहण करना ही अत्यन्त कठिन काम है।

"तदपि कहे बिनु रहा न कोई।

× × × ×

"नृप बेष अस कारन गाया। मजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा" आर्त पुकार उठता है, जिज्ञासु पूछे बिना मानता नहीं, अर्थार्थी अन्त तक देखे बिना छोड़ता नहीं और जो ज्ञानी है वह 'दरबार से हरगिज उठनेवाला नहीं'। वह तथा तो राम की गोद में है।

जो इनमें से किसी भी श्रेणी में नहीं, जो अपने निम्न पद से विचलित हो और अपने जीवन के शेष काल में भी आर्त की भाँति दो शब्द कहे तो अस्वाभाविक नहीं है। अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए तो रोना सहज है। परन्तु अपनी असली शुद्ध प्रकृति से बिछुड़ कर सच्चे आर्त भाव से रोना राम ने जगत् को सिखाया। आज जो कोई सीता राम का लाल रोकर माता को पुकार सकता है वह कल जाकर पिता को भी वश में कर लेगा। आज जहाँ वाणी है, कल वहाँ श्रद्धा है। जो समय रहते शुद्ध प्रकृतिस्थ होता है वह समय टलने के पहले महापद पा लेता है।

यहीं मास पारायण के दूसरे दिन का विश्राम हुआ। परन्तु इसमें समूचे ग्रन्थ के मानवी सिद्धान्तों का सार आ गया है। जहाँ सब हार आई वहाँ मुक्त सरीखे अकिंचन मनुष्यों का